पण्डित सदासुख ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

प्रथमावृति : ५०००

१ फरवरी, १९८६

मूल्य : चार रुपये

प्राप्ति स्थान :
(१) वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
बाल भवन, डॉ नन्दलाल मार्ग,
अजमेर-३०५००१

(२) श्री कुन्दकुन्द-कहान स्मृति प्रकाशन ट्रस्ट
ज्ञानानन्द निवास, किला अन्दर,
विदिशा (म प्र.) ४६४००१

मुद्रक : प्रिण्ट हाऊस,
बाबू मोहल्ला, केसरगज,
अजमेर (राज.)

विषय-सूची

विषय-सूची

अपनी बात

मृत्यु सभी के जीवन मे अवश्यम्भावी है जो जन्मता है वह अवश्य ही मरण को प्राप्त होता है यह प्रत्यक्ष सत्य है किन्तु इस जीव ने ऐसे कुमरण तो अनेक वार किए सम्यक्मरण आज तक नही किया। ऐसे विरले ही धर्मात्मा महाज्ञानी पुरुष होते हैं जो मुस्कराते-मुस्कराते सभी लोक का विस्मरण करते हुए ज्ञानानन्द स्वभावी निजलोक के स्मरणपूर्वक नाशवान काया का त्याग करते हैं। अपने अमरत्व द्वारा अमरगति को प्राप्त करते हैं जिससे पुन जन्म मरण का चक्र ही समाप्त हो जाए। इसी भावना से काफी समय से मैं चाहता था कि अनेक आचार्यों, ज्ञानीयो ने मृत्यु के पूर्व ही मृत्यु महोत्सव मनाया, समाधि-मरण लिखे। क्यो न सभी का एक सग्रह किया जाये और मैंने सारी जगह से खोज की, जिनमे से आठ गद्य मे और आठ पद्य के सोलह समाधिमरण तैयार किये और अपने अनुज प मुकेश 'तन्मय' शास्त्री को सम्पादन का कहा। अनेक ज्ञानीयो ने समाधिमरण, सल्लेखना, मृत्यु महोत्सव आदि अनेक नामो मे सु-सुन्दर विश्लेषण किया और मृत्यु को उत्सव ही नही महा+उत्सव-महोत्सव मनाने को कहा। अनेक ज्ञानीयो ने अपने अन्त समय मे समाधिपूर्ण जीवन जीने की कला समझ कर उसे जीवन मे उतारा। प सदासुखदास जी रत्नकरण्ड श्रावकाचार ने भावना अधिकार पूर्ण करते हुए लिखते हैं कि "अब यहा अनेकान्त भावना और समयसारादि भावना वर्णन करनी चाहिये, परन्तु आयु कम वा अब शिथिलपनातै ठिकाना नाहीं, तातै सूत्रकार का कह्या कथनकू समेटना उचित विचारि मूलग्रन्थ का कथन लिखिये हैं यहां तक श्रावक के बारहव्रत तो वर्णन किये, **अब अन्तकाल में सल्लेखना किया सफल नाहीं होय बारह व्रत सुवर्ण का मन्दिर खड़ा किया अब या ऊपर सल्लेखना है सो रत्नमयी कलश चढ़ावना है यातै सल्लेखना का स्वरूप कहिये हैं!"**

अतएव प. सदासुखदासजी ने सुन्दर समाधि वर्णन किया तथा अनेक आचार्यो ज्ञानीयो ने समाधिमरण कई प्रकार से किए। आशा है सभी जन मृत्यु महोत्सव के माध्यम से मरणका स्वरूप समझेंगे और आत्मज्ञान पूर्वक सर्व अवस्थाओ मे वीतराग भाव अगीकार करेंगे इसी भावना के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं।

—विनोद 'चिन्मय'

प्रकाशकीय

पण्डित सदासुखदास जी की स्मृति को जीवित रखने वाला प्रसिद्ध ऐतहासिक नगरी अजमेर (राजस्थान) के मूल निवासी अध्यात्म प्रेमी सेठ **श्री पूनमचन्द जी लुहाडिया** के हृदय मे बहुत समय से यह विकल्प चलता था कि अजमेर मे उसके आस पास के क्षेत्रों में तथा सारे भारतवर्ष और विदेशों में अध्यात्म का प्रचार प्रसार तीव्र गति से हो। सभी जीव सम्यक् वस्तु स्वरूप को समझकर सुखी हो। इस पवित्र भावना को लेकर तत्त्व प्रचार प्रसार के पावन उद्देश्य से दिनांक १६ अप्रेल, १६८५ को अजमेर में स्थित बाल भवन नामक अपनी अचल सम्पत्ति को उन्होने **"वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, अजमेर"** के नाम परिवर्तित कर दी।

वीतराग विज्ञान के प्रचार प्रसार के साथ-साथ वीतरागी वाणी (जिनवाणी) जो कि वर्तमान में आवश्यक व उपयोगी होते हुए भी अप्रकाशित है उसके लिए "पं सदासुख ग्रन्थमाला" स्थापित करके उन्होने एक पवित्र और महान आदर्श प्रस्तुत किया है।

ट्रस्ट की समस्त गतिविधि के सफल सचालन का भार श्री टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक **पं. मुकेश "तन्मय"** शास्त्री, धर्मरत्न, धर्मालंकार को सौपा गया। दिनाक २२जून,१६८५ को उन्होने अपना कार्यभार भी सम्हाल लिया और अजमेर में नियमित रूप से दोनो समय आध्यात्मिक प्रवचन के साथ-साथ बालको की कक्षा आदि के रोचक कार्यक्रम अजमेर मुमुक्षु मण्डल के लिए हर्ष के विषय बन गए हैं।

मुझे यह कहते हुए अत्यत हर्ष हो रहा है कि पं. सदासुख दास जी की समाधि स्थित भूमि अजमेर से पं. सदासुख ग्रन्थमाला के अन्तर्गत **'मृत्यु महोत्सव'** नामक यह प्रथम पुष्प आवश्यक व उपयोगी जानकर इतने अल्प समय में ही प्रकाशित किया जा रहा है।

इसमें विशेष रूप से सर्वप्रथम पं. सदासुख दास जी कृत समाधि-मरण का विवेचन लिया गया है ।

ससार के समस्त प्राणी सबसे अधिक मृत्यु से भयभीत होते है । मरण/मौत का जितना भय उन्हे रहता है उतना अन्य किसी का नही । यही कारण है कि ज्ञानी महापुरुषों ने मृत्यु के नाम से होने वाली अनत भयभीतता और उससे होने वाली चिंता आकुलता और दुःख को दूर करने के लिए 'मृत्यु महोत्सव' का महामत्र प्रदान किया ।

ससार शरीर भोगो की असारता, अशरणता का विचारकर उससे विरक्त होने के लिए तथा ज्ञान वैराग्य के परमशात रस मे मग्न होने के लिए "मृत्यु महोत्सव" नामक यह पुस्तक अत्यत आवयक व उपयोगी है । उक्त पुस्तक के सग्रह एव सपादन मे जिन्होने अथक परिश्रम से इस कार्य को पूर्ण किया वह धन्यवाद के पात्र है तथा मुद्रणकार्य प्रिण्ट हाऊस, अजमेर ने किया अत. वह भी धन्यवाद के पात्र हैं ।

१ फरवरी, १९८६ **पं. ज्ञानचन्द जैन**

मंत्री, वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सम्पादकीय

भौतिक चकाचौध से प्रभावित प्रत्येक प्राणी विषय कषाय में रच पच कर सब कुछ पा लेना चाहता है किन्तु एकक्षण भी सुख की सास उसे नसीब नही होती है ।

वस्तु स्वरूप के यर्थाथ परिज्ञान हुए बिना अज्ञान के कारण यह जीव नाना प्रकार के मानसिक और शारीरिक दुःखों को असहाय हो भोगते रहते है ।

वर्तमान में हम देखते है कि बहुतायत प्राणी काया के अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित हो अथवा तो वृद्धावस्था के विभिन्न कष्टों का और शरीर के वियोग की असह्य पीड़ा का विचार कर वृथा ही खेद खिन्न हुआ करते है । ऐसे समय मे यदि शरीर की आसारता [अशरणता] क्षणिकता और अशुचि मलिनता का भान हो तथा चैतन्य स्वभावी आत्मा की परम पवित्रता शाश्वतता और सार-भूतता का ध्यान हमको हो तो परिणामो मे एक जुदी जाति की शाति का अनुभव हो सकता है ।

संसार शरीर भोगों की निःसारता । आशरणता तथा मृत्यु के समय और उसके पूर्व होने वाली अनत वेदना से मुक्त होने के लिए ज्ञानी महापुरुषों ने हमें जो महामंत्र दिये हैं उन्हीका संकलन वर्तमान में आवश्यक व उपयोगी जानकर मेरे ही अग्रज श्री विनोद 'चिन्मय' ने बड़े परिश्रम से '*मृत्यु महोत्सव*' के नाम से किया है । समाधि-मरण, सल्लेखना अथवा मृत्यु महोत्सव के नाम से स्थान-स्थान पर जो सुन्दर, मार्मिक और ज्ञान वैराग्यपरक वर्णन गद्य व पद्य मे प्राप्त होता है उसको ही व्यवस्थित रूप से यहा सम्पादित किया है ।

प० सदासुख ग्रन्थमाला से प्रकाशित 'मृत्यु महोत्सव' में सर्वप्रथम पं० सदासुखदास रचित मृत्यु महोत्सव का स्वरूप रत्नकरण श्रावका-

चार के आधार से लिया है । उनके द्वारा लिखित समाधि मरण का स्वरूप बडा ही मार्मिक व हृदयस्पर्शी है । चू कि उनकी भाषा ढूढारी है । अतः बहुत से लोगो का कहना था कि इसका आधुनिक हिन्दी भाषा मे अनुवाद करके प्रकाशित किया जाए किन्तु उनकी सरल सुबोध, मधुर और करुणा भरी वाणी का जो प्रभाव पड़ता है उतना अनुवाद करने के बाद नही । उसमे यथार्थता (ओरीजनलटी) के दर्शन होते है और बार बार पढने का हमारा मन करता है। इसके अतिरिक्त भगवती आराधना की टीका करते हुए पं० सदासुखदासजी ने ही दिगम्बर भावलिङ्गी संत के समाधि मरण का जो वर्णन किया है एव भेद प्रभेद बतालाए है तथा अन्य रचना पर भी प्राप्त गद्य पद्य दोनो समाधिमरण को यहा क्रमश दिया है । विशेष विचारणीय बातो को मोटा टाईप मे दिया गया है तथा सोलह पाठो मे विभक्त करके समाधि मरण दिये है ।

आशा है पाठकगणो को अवश्य ही पसन्द आयेगे ।

मृत्यु के पूर्व ही मृत्यु महोत्सव के यर्थाथ स्वरूप को समझकर ससार शरीर भोगो से विरक्त हो 'चिन्मय' तत्त्व मे सदा-सदा के लिए 'तन्मय' हो जाये इसी पवित्र भावना के साथ विराम लेता हू ।

—पं. मुकेश "तन्मय" शास्त्री

पं. सदासुखदासजी : जीवन परिचय

प. सदासुखदास जी आचार्यकल्प प. टोडरमल जी परम्परा के विद्वान थे। जिनने अपना सम्पूर्ण जीवन माँ सरस्वती की उपासना में व्यतीत किया और ज्ञान रूपी महादान की परम्परा को आज तक अक्षुण्ण बनाये रखने का आपने ही पूर्ण श्रेय प्राप्त किया।

प. सदासुखदास जी का जन्म जयपुर में विक्रम स. १८५२ के आसपास हुआ। आपके पिता का नाम दुलीचन्द जी था। आपके पुत्र गणेशलाल जी थे उनके दत्तक पुत्र श्री राजूलाल जी हुए और राजूलालजी के पुत्र मूलचन्दजी थे, अब आपके वश में कोई नही है।

मनिहारों का रास्ता, जयपुर मे स्थित आपके मकान में एक चैत्यालय था जो आज भी डेडाकों का चैत्यालय कहलाता है प. जी के पूर्वज डेडराज जी थे; अतः उन्ही के नाम से 'डेडाका' कहलाने लगे।

आप प. मन्नालाल जी के शिष्य और प. जयचन्द जी छाबड़ा के प्रशिष्य थे अतः आपके विचारो पर उनकी छाया पूर्ण रूप से पडी जान पड़ती है आपकी चित्तवृत्ति, सदाचारिता, आत्म निर्भरता, अध्यात्म रसिकता, विद्वता, सच्ची धार्मिकता, धर्मात्माओ और साधर्मियों के प्रति वात्सल्य, जिनवाणी का निरन्तर स्वाध्याय-चिन्तवन आदि से ओत प्रोत थी। आपमे सन्तोष, सेवाभाव और जिनवाणी के प्रति अपार स्नेह भक्ति थी ! इसी कारण से आपका अधिकांश समय शास्त्र स्वाध्याय, सामायिक, तत्वचिन्तन, पठन-पाठन और ग्रन्थो के टीका तथा अनुवाद आदि प्रशस्त धार्मिक कार्यों मे ही व्यतीत होता था।

आपकी एकमात्र लगन स्व-पर के भेद विज्ञानरूप आत्मरस के आस्वादन मे ही मग्न रहने की थी फिर भी शास्त्रो के प्रति ममता आपके हृदय मे अपना विशिष्ट स्थान रखती थी।

प. जी शास्त्र प्रवचन मे वस्तु तत्व का निरुपण इस रूप मे करते थे कि श्रोताजन मन्त्रमुग्ध हो जाते और हमेशा सन्तुष्टि का अनुभव करते थे। कहा जाता है कि आपको राजकीय सस्था से जिनमे आप कार्य करते थे ८)या १०) मासिक वेतन मिलता था और वह बरावर ४० वर्षो तक उतना ही मिलता रहा आपने उसमे कभी कोई वृद्धि नही चाही, जबकि उस विभाग में कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियो के वेतन मे तिगुनी-चौगुनी तक वृद्धि हो चुकी थी। एक बार जयपुर महाराज की दृष्टि मे यह बात आई और उन्होने अपने कर्मचारियो को डाटा और पडितजी से कहा कि—हम तुम्हारे कार्य से प्रसन्न है, तुम जितना कहो उतना वेतन बढा दिया जाय ? पडितजी ने कहा कि—महाराज ! यदि आप सचमुच मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे काम के घण्टे ८ के स्थान पर घटाकर ४ कर दिये जांय जिससे कि मैं और अधिक धर्म साधना कर सकू। जयपुर महाराज ने उनके इस उत्तर से प्रसन्न होकर उनके काम के घटे भी आधे घटा दिये और वेतन मे भी दुगनी वृद्धि कर दी। पडितजी ने बढा हुआ वेतन लेने से इन्कार कर दिया। प्रारम्भ से ही आपको जैन शास्त्रो के अध्ययन की रुचि थी एवं शास्त्र ज्ञान भी अच्छा था। पं. मन्नालाल जी सगाका, जयपुर के पास आपने विधाभ्यास किया और कुलक्रम से वीसपथी होते हुए भी तेरहपथी शैली को आपने अपनाया।

आपकी सर्वप्रथम रचना भगवती आराधना भी हिन्दी वचनिका है दूसरी रचना सूत्रजी लघु टीका है। (३) सूत्रजी की बडी टीका—अर्थ प्रकाशिका (४) समयसार नाटक वचनिका (५) अकलकाष्टक वचनिका (६) मृत्यु महोत्सव (७) रत्नकाण्ड श्रावकाचार, (८) नित्य नियम पूजा है। एक ऋषि मडल पूजा भी आपने बनाई। प नाथूलाल जी दोसी, प. पारसदास जी विगोतिया, प. भोलीलाल जी सेठी, विजयलाल जी, आनन्दीलाल जी, सेठ मूलचन्द जी सोनी अजमेर आदि आपके प्रमुख शिष्य थे। इस समय आपने बहुतो को ज्ञानदान दिया। पडित जी की विद्वता और सेवा कार्य की प्रशसा आरा, अजमेर, आगरा आदि प्रसिद्ध नगरो तक थी।

लगभग ७० वर्ष की वृद्धावस्था मे पडितजी के जीवन मे एक ऐसा

मोड़ आया जिसके कारण पंडितजी परेशान हो गए एकमात्र सहारा २० वर्षीय पुत्र गणेशलाल जो सुयोग्य और अच्छे विद्वान बन गए थे वह इस नश्वर देह का त्याग कर दुनिया से उठ गए। पण्डित जी पर वज्रपात सा हो गया। तत्पश्चात अजमेर निवासी प्रसिद्ध सेठ श्री मूलचन्दजी सोनी (सेठ श्री भागचन्दजी सोनी के दादा) ने आपको ढाढस बधाया और कहा कि गणेशलाल नही तो मै उसकी जगह मौजूद हू और सेठजी प. सदासुखदास जी को अजमेर ले आये और फिर वह अजमेर मे ही रहने लगे।

जब उन्हे अपनी इस पर्याय के अन्त होने का आभास होने लगा तो उन्होने जयपुर से अपने प्रधान शिष्य पं. पन्नालाल सधी एवं भोलीलालजी को अपने पास अजमेर में बुलाया और अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करते हुए कहा अब मै इस अस्थायी पर्याय से विदा होता हूं मैने और मुझसे पूर्ववर्ती विद्वानो ने असीम परिश्रम करके अनेक उत्तमोत्तर ग्रथों की सुलभ भाषा बचनिकाये बनाई है और नवीन ग्रन्थ भी बनाये है।

परन्तु देश-देशांतरों में उनका जैसा प्रचार होना चाहिए था वैसा नही हुआ है और तुम इस कार्य के सर्वथा योग्य हो तथा जैन धर्म के मर्म को भी अच्छी तरह समझ गए हो। अतएव मैं गुरु दक्षिणा मैं तुमसे केवल यही चाहता हूं कि जैसे बने वैसे इन ग्रन्थों के प्रचार का प्रयत्न करो। वर्तमान समय मे इसके समान पुण्य का और धर्म की प्रभावना का अन्य कोई दूसरा कार्य नही। उनकी अन्तिम इच्छा यही थी कि समाज मे मिथ्यात्व और शिथिलाचार न फैलने पावे, विद्वानों और सत्साहित्य प्रकाशन की परम्परा सदा कायम रहे, पण्डितजी के आदेश पालन की सबने प्रतिज्ञा की, कार्यान्वित भी किया और हस्तलिखित ग्रन्थ सारी जगह भेजे गए।

पण्डितजी ने अन्त समय में सर्वसंकल्प विकल्पो को छोडकर अजमेर मे ही समाधिमरण लेने की भावना अपने शिष्यों से व्यक्त की थी जो भगवती अराधना की टीका प्रशस्ति के निम्न दोहों से प्रकट है :—

मेरा हित होने को और, दीखै नाहि जगत मे ठौर।
यातै भगवती शरण जु गही, मरण आराधन पाऊ सही ।।
हे भगवति ! तेरे परसादतै मरण समय मत होउ विषाद ।
पच परमगुरु पद करि ढोक, सयम सहित लहू परलोक ।।

वास्तव मे पण्डितजी का जीवन एक आदर्श जैन गृहस्थ विद्वान का जीवन और मरण एक पण्डितमरण था। प्रत्येक ज्ञानी सद्‌गृहस्थ को इसी प्रकार के जीवन और इसी प्रकार के मरण को भावना भाना चाहिए इसी भावना से ही प. सदासुख ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प "मृत्यु महोत्सव" प्रकाशित किया गया है। अतएव सभी जन अवश्य ही इससे लाभान्वित होगे ऐसी भावना भाता हू ।

१ फरवरी, १९८६ पूनमचन्द लुहाडिया

अध्यक्ष—वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

पंडित सदासुखदास जी

१ मृत्यु महोत्सव

पं. सदासुखदास जी

मुक्ति मार्ग में रत्नत्रयपाथेय है

मृत्युमार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे।
समाधि-बोधौ पाथेयं यावन्मुक्तिपुरी पुरः ॥ १ ॥

मृत्यु मार्ग में प्रवृत्त हूं मै, वीतराग स्वामी दो मुझको।
पाथेय, समाधि, बोधि जिससे, पहुंचूं यावत् सु-मोक्षपुर को ॥ १ ॥

अर्थ :—मृत्युके मार्गमे प्रवर्त्यो जो मैं ताकूं भगवान वीतराग जो है सो समाधि कहिये स्वरूप की सावधानी अर वोध कहिये रत्नत्रयका लाभ सो ही जो पाथेय कहिये परलोक के मार्गमे उपकारक वस्तु सो देहु, जितनेकमे मुक्तिपुरी प्रति जाय पहुचूं, या प्रार्थना करूं हूं।

भावार्थ :—मै अनादिकालतै अनन्त कुमरण किये, [illegible] सर्वज्ञ वीतराग ही जाने है, एक वार हू सम्यक् मरण नाहीं किया, जो सम्यक् मरण करता तो फिर ससार मे मरणका पात्र नहीं होता। जातै जहां देह मर जाय अर आत्माका सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वभाव है सो विषय कषायनिकरि नाहीं घात्या जाय सो सम्यक् मरण है। अर मिथ्याश्रद्धानरूप हुआ देहका नाश कूं अपना आत्माका नाश जानना, सक्लेशतै मरण करना सो कुमरण है, सो मै मिथ्यादर्शनका प्रभाव करि देहकूं ही आपा मानि [illegible] दर्शनस्वरूपका घातकरि अनन्त परिवर्तन किये सो [illegible] वीतरागसौ ऐसी प्रार्थना करू हूं जो मेरे मरणके समयमें वेदना [illegible] तथा आत्मज्ञान रहित मरण मत होहू, क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग [illegible] मरणरहित भये है, तातै मै हू सर्वज्ञ वीतरागका [illegible] शरहित धर्मध्यानतै मरण चाहता वीतराग ही का [illegible] हू।

अब मै अपने आत्माकूं समझाऊं हूं :—

आत्मा ज्ञान शरीरी है

कृमिजालशताकीर्णे जर्जरे देहपिंजरे।
भज्यमाने न भेतव्यं यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥२॥

शत शत कीटाणु जाल पूरित, यह जर्जर देही का पिंजडा।
इसके विनाश मे भय न करो, कारण तव तन है ज्ञान जड़ा ॥२॥

अर्थ :—भो आत्मन्! कृमिनिके सैंकडा जालकरि भर्या अर नित्य जर्जर होता या देहरूप पींजरा इसकूं नष्ट होतें तुम भय मत करो, जातें तुम तो ज्ञानशरीर हो।

भावार्थ :—तुम्हारा रूप तो ज्ञान है जिसमें ये सकल पदार्थ उद्योतरूप हो रहे हैं, अर अमूर्तीक ज्ञान ज्योतिःस्वरूप अखण्ड अविनाशी ज्ञाता दृष्टा है, अर यह हाड माँस चामड़ामय महादुर्गन्ध विनाशीक देह है सो तुम्हारा रूपतें अत्यत भिन्न है, कर्मके वशतें एक क्षेत्रमे अवगाहनकरि एकसे होय तिष्ठै है तो हू तुम्हारे इनके अत्यत भेद है। अर यो देह पृथ्वी जल, अग्नि, पवनके परमाणूनिका पिंड है सो अवसर पाय बिखरि जायगा, तुम अविनाशी अखड ज्ञायकरूप हो। इसके नाश होनेतें भय कैसें करो हो?

अब और हू कहैं है :—

देहान्तर मे गमन से भय नहीं करो

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्युमहोत्सवे।
स्वरूपस्थः पुरं याति देही देहान्तरस्थितिः ॥३॥

ज्ञानी जनको क्यो भय होता, पाकर यह मृत्यु महोत्सव है?
आत्मा स्व-भाव मे जो रमता, जब केवल देह बदलता है ॥३॥

भावार्थ :—भो ज्ञानिन् कहिये हे ज्ञानी! तुम को वीतरागी साम्यग्ज्ञानी उपदेश करें हैं—जो मृत्युरूप महान उत्सवको प्राप्त होनेतैं काहेतै भय करो हो, यो देही कहिये आत्मा सो अपने स्वरूपमे तिष्ठता अन्य देहमे स्थितिरूप पुरकूं जाय है, यामे भयका हेतु कहा है?

भावार्थ :—जैसे कोऊ एक जीर्णकुटीमेतें निकसि अन्य नवीन महलकूं प्राप्त होय सो तो बडा उत्सवका अवसर है, तैसें यो आत्मा

अपने स्वरूपमे तिष्ठता ही इस जीर्ण देहरूप कुटीकू छांड़ि नवीन देहरूप महलको प्राप्त होनेतै महा उत्साह का अवसर है, यामे कुछ हानि नाही जो भय करिये। अर जो अपने ज्ञायकस्वभावमें तिष्ठते परका अपनाकरिरहित परलोक जावोगे तो बड़ा आदर सहित दिव्य धातु उपधातु रहित वैक्रियिकदेहमे देव होय अनेक महर्द्धिकनिमे पूज्य महान देव होवोगे। अर जो यहां भयादिक करि अपना ज्ञानस्वभावकू बिगाड़ि परमे ममता धारि मरोगे तो एकेन्द्रियादिकका देहमें अपने ज्ञानका नाश करि जड रूप होय तिष्ठोगे। ऐसै मलिन क्लेशसहित देहकू त्यागि क्लेशरहित उज्जवल देह मे जाना बड़ा उत्सवका कारण है।

समाधिमरण उपकारक है

सुदत्तं प्राप्यते यस्मात् दृश्यते पूर्वसत्तमैः।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्युभीतिः कुतः सताम् ॥४॥

है मिलता इससे दिया दान-फल पूर्व सुधी यह दिखलाते।
है भोग भोगते स्वर्गों के फिर सुजन मृत्यु भय क्यों खाते? ॥४॥

अर्थ :—पूर्वकालमें भये गणधरादि सत्पुरुष ऐसैं दिखावैं है जो जिस मृत्युतै भले प्रकार दिया हुआका फल पाईये अर स्वर्गलोकका सुख भोगिये. तातै सत्पुरुषकै मृत्युका भय काहेतै होय ?

भावार्थ :—अपना कर्तव्यका फल तो मृत्यु भये ही पाइये है। जो आप छहकायके जीवनिकू अभयदान दिया अर रागद्वेष काम क्रोधादिकका घातकरि असत्य अन्याय कुशील परधनहरण का त्यागकरि परम सन्तोष धारणकरि अपने आत्माकू अभयदान दिया ताका फल स्वर्गलोक बिना कहा भोगनेमे आवै ? सो स्वर्गलोकको तो मृत्यु नाम मित्रके प्रसादतै ही पाइये। तातै मृत्युसमान इस जीवका कोऊ उपकारक नाही। यहा मनुष्य पर्यायका जीर्ण देहमे कौन-कौन दुःख भोगता, कितने काल तक रहता, आर्तध्यान रौद्रध्यानकरि तिर्यञ्च नरकमे जाय पड़ता, तातै अब मरणका भय अर देह कुटुम्ब परिग्रहका ममत्वकरि चिंतामणि कल्पवृक्ष समान समाधिमरणकू बिगाड़ि भयसहित ममतावान हुआ कुमरण करि दुर्गति जावना उचित नाही।

और हू विचारै है :—

समाधि राजा बन्दीगृह से मुक्त कराता है

आगर्भाद्दुःखसंतप्तः प्रक्षिप्तो देहपिंजरे ।
नात्मा विमुच्यते ऽन्येन मृत्युभूमिपतिं विना ।।५।।

हो गर्भ दुःख से सन्तापित, छिप गया कलेवर मे आत्मा ।
है बिना मृत्यु नृप योग लिये, यह मुक्त न हो सकता आत्मा ।।५।।

अर्थ :—यो हमारो कर्म नाम वैरी मेरा आत्माकू देहरूप पीजरामे क्षेप्या सो गर्भ मे आया तिस क्षणतै सदाकाल क्षुधा तृषा रोग वियोग इत्यादि अनेक दुखनिकरि तप्तायमान हुआ पड्या हू । अब ऐसे अनेक दुःखनिकरि व्याप्त इस देहरूप पीजरातै मोकू मृत्यु नाम राजा बिना कौन छुडावै ?

भावार्थ :—इस देहरूप पीजरेमे कर्मरूप शत्रुकरि पटक्या मैं इन्द्रियनिके अधीन हुआ नाना त्रास सहू हू, नित्य ही क्षुधा अर तृषाकी वेदना त्रास देवै है, अर सासती स्वास उच्छवासकी पवनका खेंचना अर काढना, अर नाना प्रकार रोगनिका भोगना, अर उदर भरने वास्ते नाना पराधीनता अर सेवा कृषि वाणिज्यादिकनिकरि महा क्लेशित होय रहना अर शीत उष्ण दुष्टनिकरि ताडन मारन कुवचन अपमान सहना, कुटुम्बके अधीन होना, धनिककै, राजाकै, स्त्री पुत्रादिककै आधीन रहना, ऐसा महान बदीगृह समान देह मेतै मरण नाम बलवान राजा बिना कौन निकासै ? इस देहकू कहा ताई वहता ? जाकू नित्य उठावना, जल पिवावना, स्नान करावना, निद्रा लिवावना, कामादिक विषयसाधन करावना, नाना वस्त्र आभरणादिककरि भूषित करावना, रात्रि दिन इस देहहीका दासपना करता हू आत्माकू नाना त्रास देवै है, भयभीत करै है, आपा भुलावै है । ऐसा कृतघ्न देहतै निकसना मृत्यु नाम राजा बिना नही होय । जो ज्ञानसहित देहसौ ममता छाड़ि सावधानीतै धर्मध्यानसहित सक्लेशरहित वीतरागतापूर्वक जो समाधिमृत्यु नाम राजाका सहाय ग्रहण करू तो फेरि मेरा आत्मा देह धारण ही नही करै, दुःखनिका पात्र नाही होय । **समाधिमरण नामा बड़ा न्यायमार्गी राजा है मोकूं याहीका शरण होहू ।** मेरे अपमृत्युका नाश होहू ।

और हू कहैं है :—

सुखदेनेवाला मित्र समाधिमरण है

सर्वदुःखप्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः ।
मृत्युमित्रप्रसादेन प्राप्यन्ते सुखसम्पदः ॥६॥

आत्मदर्शी सब दुखद पिण्ड, तन उसको दूर भगा करके ।
वे मृत्यु मित्र संग प्रसन्न हो, रहते निज सुख-संपदको ले ॥६॥

अर्थ :—आत्मदर्शी जे आत्मज्ञानी है ते मृत्युनाम मित्रका प्रसादकरि सर्व दुःखका देनेवाला देहपिंडकूं दूर छाडिकरि सुखकी सपदाकू प्राप्त होय है ।

भावार्थ :—जो इस सप्तधातुमय महा अशुचि विनाशीक देहकूं छाड़ि दिव्य वैक्रियिक देहमे प्राप्त होय नाना सुख संपदाको प्राप्त होय है सो समस्त प्रभाव आत्मज्ञानीनिके समाधिमरणका है । **समाधिमरण समान इस जीवका उपकार करनेवाला कोऊ नाहीं है ।** इस देहमे नाना दुःख भोगना अर महान रोगादिक दुःख भोगिकरि मरना, फिर तिर्यञ्च देहमे तथा नर्कमे असख्यात अनन्तकाल ताई असख्य दुःख भोगना अर जन्ममरणरूप अनन्त परिवर्तन करना, तहा कोऊ शरण नाही, इस ससारमे परिभ्रमणसौ रक्षा करनेकू कोऊ समर्थ नाही । कदाचित् अशुभकर्मका मन्द उदयतै मनुष्यगति उच्चकुल इन्द्रियपूर्णता सत्पुरुषनिका संगम भगवान जिनेन्द्रका परमागमका उपदेश पाया है अब जो श्रद्धान ज्ञान त्याग संयमसहित समस्त कुटुम्ब परिग्रहमे ममत्वरहित देहतै भिन्न ज्ञान स्वभावरूप आत्मा का अनुभवकरि भयरहित च्यार आराधना शरण सहित मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें तीन कालमे इस जीवका हित है नाही । जो ससार परिभ्रमणतै छूट जाना सो समाधिमरण नाम मित्रका प्रसाद है ।

समाधिमरण कल्पवृक्ष है

मृत्युकल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः ।
निमग्नो जन्मजम्बाले स पश्चात् क करिष्यति ॥७॥

कर प्राप्त जिन्होंने कल्पवृक्ष, है निज कल्याण न कियत किया ।

भावार्थ :—जो जीव मृत्यु नाम कल्पवृक्षकूं प्राप्त होतैं हू अपना कल्याण नाही सिद्ध किया सो जीव ससाररूप कर्दममे डूबा हुआ पाछै कहा करसी ?

भावार्थ :—इस मनुष्य-जन्ममें मरणका संयोग है सो साक्षात् कल्पवृक्ष है। जो वांछित लेना है सो लेहु। जो ज्ञानसहित अपना निज स्वभाव ग्रहणकरि आराधनासहित मरण करो तो स्वर्गका महर्द्धिकपना तथा इन्द्रपना अहमिंद्रपना पाय पीछें चक्रीपना तथा तीर्थङ्कर होय निर्वाण पावो। **मरणसमान त्रैलोक्यमें दाता नाहीं।** ऐसे दाताकू पायकरि भी जो विषय की वाछा कषायसहित ही रहोगे **तो विषयवांछाका फल तो नरक निगोद है।** मरण नाम कल्पवृक्षकूं बिगाड़ोगे तो ज्ञानादि अक्षय निधानरहित भए ससार रूप कर्दममे डूब जाओगे। अर भो भव्य हो ! जो ये वाछाका मारचा हुआ खोटे नीच पुरुषनिका सेवन करो हो, अतिलोभी भये विषयनिके भोगनेकू धनकेवास्ते हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रहमे आसक्त भये निद्य कर्म करो हो, अर वाछित पूर्ण हू नाही होय, अर दुखके मारे मरण करो हो, कुटुम्बादिकनिकूं छाडि विदेशमे परिभ्रमण करो हो, निंद्य आचरण करो हो, अर निद्यकर्म करिकैं हू अवश्य मरण करो हो। अर जो एक बार हू समता धारणकरि त्याग-व्रतसहित मरण करो तो फेरि ससार-परिभ्रमणका अभावकरि अविनाशी सुखकूं प्राप्त हो जावो। तातैं **ज्ञानसहित पंडितमरण** करना ही उचित है।

समाधि उत्तम दातार है

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सातोत्थितिर्यथा ॥८॥

जिससे कि जीर्ण औ, शीर्ण सभी, हैं नूतन हो जाया करता।
वह मरण न क्या सातोदय-हित, सज्जन को हर्ष हेतु होता ? ॥८॥

अर्थ :— जिस मृत्युतैं जीर्ण देहादिक सर्व छूटि नवीन हो जाय सो मृत्यु सत्पुरुषनिके साताका उदयकी ज्यो हर्षके अर्थि नाही होय कहा ? ज्ञानीनिके तो मृत्यु हर्षके अर्थि ही है।

भावार्थ :—यो मनुष्यनिको शरीर भोजन करावता नित्य ही समय-समय जीर्ण होय है. देवनिका देह ज्यों जरा-रहित नाही है, दिन-दिन बल घटै है, काति अर रूप मलीन होय है, स्पर्श कठोर होय है, समस्त नसानिके हाड़निके बधान शिथिल होय है, चाम ढीली होय, मासादिकनिकूं छाडि ज्वरलीरूप होय है, नेत्रनिकी उज्ज्वलता बिगड़ै है, कर्णनिमे श्रवण करनेकी शक्ति घटै है, हस्त-पादादिकनिमें असमर्थता दिन-दिन बधै है, गमनशक्ति मन्द होय है, चलते बैंठते उठते स्वास बधै है, कफकी अधिकता होय है, रोग अनेक बधै हैं, ऐसी जीर्ण देहका दु:ख कहा तक भोगता अर ऐसैं देह का घीसना कहा तक होता ? मरण नाम दातार बिना ऐसे निंद्य देहकूं छुडाय नवीन देहमे वास कौन करावै ? जीर्ण देह है तिसमे बड़ा असाताका उदय भोगिये है सो मरण नाम उपकारी दाता बिना ऐसी आसाताकू दूर कौन करै ? अर जे सम्यग्ज्ञानी है तिनकै तो मृत्यु होनेका बडा हर्ष है जो अब सयम व्रत त्याग शीलमे सावधान होय ऐसा यत्न कर जो फेरि ऐसे दु:खका भरचा देहको धारण नाही होय, सम्यग्ज्ञानी तो याहीकूं महा साताका उदय मानै है।

ज्ञानी भय रहित है

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत् ।
मृत्युभीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥९॥

देहस्थ जानता है सुख दुख, परलोक स्वयं जाया करता ।
जब है परलोक सिद्ध होता, तब कौन मृत्यु से भय करता ? ॥९॥

अर्थ :—यो आत्मा देहमे तिष्ठतो हू सुखकूं तथा दु:खकूं सदा-काल जानै ही है अर परलोकप्रति हू स्वयं गमन करै है तो परमार्थतै मृत्युका भय कोनकै होय ?

भावार्थ :—जो अज्ञानी बहिरात्मा है सो तो देहमे तिष्ठता हू मैं सुखी, मै दुखी, मै मरू हू मै क्षुधावान, मै तृषावान मेरा नाश हुआ, ऐसा मानै है। अर अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि ऐसे मानै है—जो उपज्यो है सो मरैगा। पृथ्वी, जल, अग्नि, पवनमय पुद्गल परमाणूनिके पिंडरूप उपज्यो यो देह है सो विनशैगो। मैं ज्ञानमय अमूर्तीक आत्मा

मेरा नाश कदाचित् नाही होय। ये क्षुधा-तृषावात पित्त कफ रोग भय वेदना पुद्गलके है, मै इनका ज्ञाता हू, मैं यामे अहकार वृथा करूं हू। इस शरीर के अर मेरे एक क्षेत्रमे तिष्ठनेरूप अवगाह है तथापि मेरा रूप ज्ञाता है, अर शरीर जड है, मैं अमूर्तीक, देह मूर्तीक, मै अखण्ड एक हू, शरीर अनेक परमाणूनिका पिड है, मै अविनाशी हू, देह विनाशीक है। अब इस देहमे जो रोग तथा तृषादि उपजै तिसका ज्ञाता ही रहना। मेरा तो ज्ञायकस्वभाव है। **परमें ममत्व करना सो ही अज्ञान है मिथ्यात्व है।** अर जैसे एक मकानको छाडि अन्य मकानमे प्रवेश करै तैसे मेरे शुभ अशुभ भावनिकरि उपजाया कर्मकरि रच्या अन्य देहमे मेरा जाना है, इसमे मेरा स्वरूपका नाश नाही, अब निश्चय करि विचारत मरणका भय कौनके होय ?

हर्ष देनेवाला समाधिमरण है

संसारासक्तचित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

मन से आसक्त जगत मे जो, है मृत्यु भीति के हित उनको
लेकिन है वही हर्ष के हित, ज्ञानी-वैराग्य वासियो को ॥१०॥

अर्थ —ससार मे जिसका चित्त आसक्त है, अपना रूपकू जे जानै नाही तिनकै मृत्यु होना भयके अर्थि है। अर जे निजस्वरूपके ज्ञाता है ससारतै विरागी है, तिनकै तो मृत्यु है सो हर्षके अर्थि ही है।

भावार्थ :—मिथ्यादर्शनके उदयतै जे आत्मज्ञानकरि रहित देहहीकू आपा मानने वाले अर खावना पीवना कामभोगादिक इद्रियनिकू ही सुख माननेवाले बहिरात्मा तिनके तो अपना मरण होना बडा भयके अर्थि है, जो हाय मेरा नाश भया, फेरि खावना पीवना कही नाही है, नाही जानिये मरे पीछै कहा होयगा, कैसे मरू गा, अब यह देखना मिलना कुटुम्बका समागम सब मेरे गया, अब कौनका शरण ग्रहण करू, कैसै जीऊ ? ऐसै महा सक्लेशकरि मरै है।

अर जे आत्मज्ञानी है तिनके मृत्यु आये ऐसा विचार उपजै है.— जो मैं देहरूप बदीगृहमे पराधीन पड्या हुआ इन्द्रियनिके विषयनिकी चाहनाकी दाहकरि, अर मिले विषयनिकी अतृप्तिताकरि, अर नित्य

ही क्षुधा तृषा शीत रोगनिकरि उपजी महावेदना तिनकरि एकक्षरण हू थिरता नाही पाई। महान दुःख पराधीनता अपमान घोर वेदना अनिष्टसयोग इष्टवियोग भोगता ही सक्लेशतैं काल व्यतीत किया। अब ऐसे क्लेश छुडाय पराधीनतारहित मेरा अनन्त सुख स्वरूप जन्म-मरणरहित अविनाशी स्थानकूं प्राप्त करनेवाला यह मरणका अवसर पाया है। यो मरण महासुखको देनेवाला अत्यन्त उपकारक है अर यो ससारवास केवल दु खरूप है। यामे एक समाधिमरण ही शरण है और कहू ठिकाना नाही है, इस विना च्यारो गतिनिमे महा त्रास भोगी है। अब ससारवासतै अति विरक्त मै समाधिमरणका शरण ग्रहण करूं।

आत्मा को जाने से शरीर नहीं रोक सकता है

> पुराधीशो यदा याति स्वकृतस्य बुभुत्सया।
> तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पञ्चभौतिकैः ॥११॥

> है जब परलोक गमन करता, आत्मा स्वकृत उपयोग अर्थ।
> तब प्रपच क्यों पंचभूत के, हो सके रोकने को समर्थ ॥११॥

अर्थ :—जिस कालमे यो आत्मा अपना किया का फल भोगने की इच्छाकरि परलोककूं जाय है तदि पंचभूत सम्बन्धी देहादिक प्रपचनिकरि याकूं कौन रोके?

भावार्थ :—इस जीवका वर्तमान आयु पूर्ण हो जाय अर जो अन्य परलोकसम्बन्धी आयुकायादिक का उदय आ जाय तदि परलोककूं गमन करते आत्माकूं शरीरादिक पचभूत कोऊ रोकने मे समर्थ नाही है। तातै बहुत उत्साह सहित चार आराधनाका शरण ग्रहणकरि मरण करना श्रेष्ठ है।

समाधि निर्वाण को देती है।

> मृत्युकाले सतां दुःखं यद्भवेद्व्याधिसंभवम्।
> देहमोहविनाशय मन्ये शिवसुखाय च ॥१२॥

> मृत्युकाल जो दुःख व्याधिया, होती मृत कर्मानुकूल है।
> वे सुजनो को देह मोह हत-हितओ चिर शिव सौख्य मूल है ॥१२॥

अर्थ:—मृत्यु अवसरविषै जो पूर्वकर्मका उदयतै रोगादिक व्याधिकरि दु.ख उत्पन्न होय है सो सत्पुरुषनिके देहकेविषै मोह का नाशके अर्थि है अर निर्वाणका सुखके अर्थि है।

भावार्थ—यो जीव जन्म लीयो तिस दिनतै देहसो तन्मय हुआ या मे बसने कू ही बडा सुख मानै है, या देहकू अपना निवास जानै हैं, यासू ममता लग रही है, यामे बसने सिवाय अपना कहूं ठिकाना नाही देखै है। अब ऐसा देहमे जो रोगादिकरि दुःख उपजै है तब सत्पुरुषनिकै यासू मोह नष्ट हो जाय है अर साक्षात् दु:खदाई अथिर विनाशीक दोखै है। अर देहका कृतघ्नपना प्रकट दीखै है तदि अविनाशी पदके अर्थि उद्यमी होय है, वीतरागता प्रकट होय है।

तदि ऐस विचार उपजै है:—जो इस देहकी ममताकरि मैं अनन्तकाल जन्म मरण नाना वियोग रोग सतापादिक नरकादिक गतिनिमे दु ख भोगे अब भी ऐसे दु खदाई देहमे ही फेरि हू ममत्व करि आपको भूलि एकेन्द्रियादि अनेक कुयोनिमे भ्रमणका कारण कर्म उपार्जन करनेकूं ममता करू हूं ? जो अब इस शरीर मे ज्वर काश श्वास शूल वात पित्त अतीसार मदाग्नि इत्यादिक रोग उपजै हैं सो इस देह मे ममत्व घटावनेके अर्थि बडा उपकार करै हैं, धर्म मे सावधान करावै हैं। जो रोगादिक नाही उपजता तो मेरी ममता हू देहतै नाही घटती, अर मद हू नाही घटता। मैं तो मोहकी अधेरीकरि आधा हुआ देहकू अजर अमर मान रहा था सो अब यो रोगनिकी उत्पत्ति मोकूं चेत कराया। अब इस देहकू अशरण जानि ज्ञान दर्शन चारित्र तपहीकूं एक निश्चय शरण जानि आराधनाका धारक भगवान परमेष्ठीकूं चित्त मे धारण करू हू।

अब इस अवसरमे हमारे एक जिनेन्द्रका वचन रूप अमृत ही परम औषधि होहू। जिनेन्द्रका वचनामृत बिना विषय कषायरूप रोगजनित दाहके मेटनेकूं कोऊ समर्थ नाही। बाह्य औषधादिक तो असाता कर्म के मद उदय होते किंचित् काल एककोऊ रोगकू उपशम करै, अर यो देह अनेक रोगनिकरि भरचा हुआ है अर कदाचित् एक रोग मिटचा तो अन्य रोगजनित घोर वेदना भोगि फेरि हू मरण करना ही पड़ैगा। तातै जन्मजरामरणरूप रोगकूं हरनेवाला

भगवानका उपदेशरूप अमृतहीका पान करूं, अर उपाय करते हू विनाशीक रोग नाहीं मिटैगा जाय कुगतिका कारण दुर्ध्यान करना उचित नाही।

रोग आवते हू बडा भला ही मानो जो रोगहीके प्रभावतै ऐसा जीर्ण गल्या हुआ देहतै मेरा छूटना होयगा। रोग नाही आवै तो पूर्वकृत कर्म नाही निर्जरै अर देहरूप महा दु:खदाई बन्दीगृहतै मेरा शीघ्र छूटना हू नाही होय है। अर यो रोगरूप मित्रको सहाय ज्यों-ज्यो देहमे बधै है त्यो-त्यो मेरा रागबधनतै कर्म व शरीर बधनतै छूटना होय है। अर यो रोग तो देहमे है इस देहकू नष्ट करैगा, मैं तो अमूर्तीक चैतन्यस्वभाव अविनाशी हूं, ज्ञाता हू। अर जो यो रोग-जनित दु:ख मेरे जाननेमे आवै सो मैं तो जाननेवाला ही हूं, याकी लार मेरा नाश नाही। जैसे लोहेका सङ्गतिमे अग्नि हू घननिका घात सहै तैसे शरीरकी संगतितै वेदनाका जानना मेरे हू है। **अग्नितै झूपड़ी बलै है झूपड़ीके माँहि आकाश नाही बलै है। तैसै अविनाशी अमूर्तीक चैतन्य धातुमय आत्मा ताका रोगरूप अग्निकरि नाश नाहीं।**

अर अपना उपजाया कर्म आपकूं भोगना ही पडैगा, कायर होय भोगूंगा तो कर्म नाही छाड़ैगा अर धैर्य धारण करि भोगूंगा तो हू कर्म नाही छांडैगा। तातै दोऊ लोकका बिगाड़नेवाला कायर-पनाकूं धिक्कार होहु। कर्मका नाश करनेवाला धैर्य ही धारण करना श्रेष्ठ है।

अर हे आत्मन्! तुम रोग आये एते कायर होओ सो विचार करो-नरकनिमे यो जीव कौन-कौन त्रास नाही भोगी? असंख्यातवार अनन्तवार मारे विदारे चीरे फाड़े गये हो, इहाँ तो तुम्हारे कहा दु:ख है? अर तिर्यंचगतिके घोर दु:ख भगवान केवलज्ञानी हू वचन-द्वारकरि कहनेकूं समर्थ नाही। अर मैं तिर्यंच पर्यायमे पूर्व अनन्तबार अग्निमें बलि बलि मरचा हूं, अनन्तबार जलमे डूबि-डूबि मरा हू, अनन्तबार विष भक्षण कर मरा हूं, अनन्तबार सिंह व्याघ्र सर्पादिकनिकरि विदारचा गया हूं, शस्त्रनिकरि छेद्या गया हू, अनन्तबार शीतवेदनाकरि मरचा हूं, अनन्तबार उष्णवेदनाकरि मरचा हूं, अनन्तबार क्षुधाकी वेदनाकरि मरा हूं, अनन्तबार तृषाकी वेदना

करि मरा हूं। अब ये रोगजनित वेदना केतीक है? रोग ही मेरा उपकार करै है। रोग नाही उपजता तो देहतै मेरा स्नेह नाही घटता, अर समस्ततै छूटि परमात्माका शरण नाही ग्रहण करता, तातै इस अवसरमे जो रोग है सोहू मेरा आराधना मरणमें प्रेरणा करनेवाला मित्र है। ऐसै विचारता ज्ञानी रोग आये क्लेश नाही करै है, मोह के नाश करनेका उत्सव ही मानै है।

समाधि अमृत देनेवाली है

ज्ञानिनोऽमृतसंगाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

यद्यपि मरण ताप करती है, पर अमृत सा ज्ञानी को है।
जैसे कुम्भ अग्नि मे तपकर, बनता शुचि जल रखने को है ॥१३॥

अर्थ :—यद्यपि इसलोकमे मृत्यु है सो जगतके आताप करने वाली है तो हू सम्यग्ज्ञानी के अमृतसग जो निर्वाण ताके अर्थि है। जैसै काचा घड़ाकूं अग्निमे पकावना है सो अमृतरूप जलके धारणके अर्थि है। जो काचा घडाकूं अग्निमे नाही पकावै तो घड़ामे जल धारण नाही होय है, अग्निमे एकबार पकि जाय तो बहुत काल जलका ससर्गकू प्राप्त होय। तैसै मृत्युका अवसरमे आताप समभाव-नेकरि एकबार सहि जाय तो निर्वाणको पात्र हो जाय।

भावार्थ :—अज्ञानीकै मृत्युका नामतै भी परिणामतै आताप उपजै—जो मैं अब चाल्या, अव कैसै जीऊ, कहा करू, कौन रक्षा करै, ऐसै सतापको प्राप्त होय है, क्योकि अज्ञानी तो बहिरात्मा है, देहादिक बाह्य वस्तुकूं ही आत्मा मानै है। अर ज्ञानी जो सम्यग्-दृष्टि है सो ऐसा मानै है—जो आयुकर्मादिकका निमित्ततै देहका धारण है, यो अपनी स्थिति पूर्ण भये अवश्य विनशैगा, मै आत्मा अविनाशी ज्ञानस्वरूप हूं जीर्ण देह कूं छाड़ि नवीनमे प्रवेश करते मेरा कुछ विनाश नाही है।

समाधि महातप है

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायासविडम्बनात्।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्युकाले समाधिना ॥१४॥

सत्पुरुष व्रतो के कष्ट झेल, जो सु-फल प्राप्त वे करते हैं।
सुख साध्य-समाधि के लिए वे, फल मरण समय मे होते हैं ॥१४॥

अर्थ—यहाँ सत्पुरुष है ते व्रतनिका बडा खेदकरि जिस फलकूं प्राप्त होइये सो फल मृत्यु अवसरमे थोरे काल शुभध्यानरूप समाधिमरणकरि सुखते साधने योग्य प्राप्त होय है।

भावार्थ :—जो स्वर्गमे इन्द्रादिक पद वा परम्पराय निर्वाणपद पंच महाव्रतादिकरि वा घोर तपश्चरणादिककरि सिद्ध करिये है सो पद मृत्युका अवसरमे जो देह कुटुम्बादिसू ममता छाडि भयरहित हुआ वीतरागता सहित च्यारि आराधनाका शरण ग्रहणकरि कायरता छांडि अपना ज्ञायक स्वभावकूं अवलवनकरि मरण करै तो सहज सिद्ध होय, तथा स्वर्गलोकमे महर्द्धिक देव होय। तहातै आय बड़ा कुलमे उपजि उत्तम सहननादि सामग्री पाय दीक्षा धारण करि अपने रत्नत्रयकी पूर्णताकूं प्राप्त होय, निर्वाण जाय है।

समाधि धारक उत्तम गतिमें जाता है

अनार्तः शांतिमान्मर्त्यो न तिर्यक् नापि नारकः।
धर्मध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनीत्वमरेश्वरः ॥१५॥

जो आर्त रहित सशान्ति मरता, पाता न तिर्यंच नरक गति वह।
औ धर्म ध्यान अनशन पूर्वक, जो मरता सुरपति होता वह ॥१५॥

अर्थ :—जाकै मरणका अवसरमे आर्त्त जो दु.खरूप परिणाम नाही होय अर शातिमान कहिये रागरहित द्वेषरहित समभावरूप चित्त होय सो पुरुष तिर्यंच नारकी नाही होय, जो धर्मध्यान सहित अनशनव्रत धारण करिकै मरै सो तो स्वर्गलोकमें इन्द्र होय, तथा महर्द्धिकदेव होय, अन्य पर्याय नाही पावै ऐसा नियम है।

भावार्थ :—जो उत्तम मरणका अवसर पाय करिकै आराधना सहित मरणमें यत्न करो। अर मरण आवतै भयभीत होय परिग्रहमें ममत्व धारि आर्त्त परिणामनिसौ मरणकरि कुगतिमें मत जाओ। यो अवसर अनन्त भवनिमे नाहीं मिलैगा अर मरण छांडैगा नाही, तातैं सावधान होय धर्मध्यानसहित धैर्य धारणकरि देहका त्याग करो।

समस्त तप समाधि के लिए है

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च ।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्यु समाधिना ॥१६॥

सन्ताप तपस्या का सहना, फिर पालन करना नित व्रत का ।
स्वाध्याय सदा नियमित करना, है सु-फल समाधि मरण सबका ॥१६॥

अर्थ :—तप का संताप भोगने का अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढनेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना सो ही है ।

भावार्थ :—हे आत्मन् ! जो तुम इतने काल इन्द्रियनिके विषयनि में वाछारहित होय अनशनादि तप किया है तो अन्तकाल में आहारादिकनिका त्यगसहित सयम-सहित देहका ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया है अर जो अहिसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमें ममताका त्यागकरि, समस्त मनवचनकायतै आरभादिककूं त्यागकरि, समस्त शत्रु मित्रनिमे वैर राग छांड़ि करि, उपसर्ग मे धीरज धारण करि,अपना एकज्ञायकस्भावकूं अवलवनकरि समाधिमरण करनेकै अर्थि किये है । अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू संक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितै भिन्न आपकूं जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनाकरि काल व्यतीत किया है । अर मरणका अवसर में हू ममता भय द्वेष कायरता दीनता नाही छाड़ोगे तो इतने काल तप कीने, व्रत पाले, श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होयगे । तातै इस मरणके अवसरमे कदाचित् सावधानी मत विगाड़ो ।

जीर्ण शरीर से प्रीति अच्छी नहीं

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः ।
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥१७॥

अति परिचित होते रुचि घटती, नव रुचि होती यह लोक कथन ।
चिरतर शरीर का नाश, लाभ-नव तन का, फिर क्यो भय रे मन ॥१७॥

अर्थ :—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय

समस्त तप समाधि के लिए है

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च ।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्यु समाधिना ॥१६॥

सन्ताप तपस्या का सहना, फिर पालन करना नित व्रत का ।
स्वाध्याय सदा नियमित करना, हैं सु-फल समाधि मरण सबका ॥१६॥

अर्थ :—तप का संताप भोगने का अर व्रतनिके पालनेका अर श्रुतके पढनेका फल तो समाधि जो अपने आत्माकी सावधानी सहित मरण करना सो ही है ।

भावार्थ :—हे आत्मन् ! जो तुम इतने काल इन्द्रियनिके विषयनि मे वाछारहित होय अनशनादि तप किया है तो अन्तकाल मे आहारादिकनिका त्यगसहित सयम-सहित देहका ममतारहित समाधिमरणके अर्थि किया है अर जो अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्यागादि व्रत धारण किये हैं सो हू समस्त देहादिक परिग्रहमे ममताका त्यागकरि, समस्त मनवचनकायतैं आरंभादिकक् त्यागकरि, समस्त शत्रु मित्रनिमे वैर राग छाड़ि करि, उपसर्ग मे धीरज धारण करि,अपना एकज्ञायकस्भावकूं अवलबनकरि समाधिमरण करनेकै अर्थि किये हैं । अर जो समस्त श्रुतज्ञानका पठन किया है सो हू सक्लेशरहित धर्मध्यानसहित होय देहादिकनितै भिन्न आपकू जानि भयरहित समाधिमरणके निमित्त ही विद्याका आराधनाकरि काल व्यतीत किया है । अर मरणका अवसर मे हू ममता भय द्वेष कायरता दीनता नाही छाड़ोगे तो इतने काल तप कीने, व्रत पाले, श्रुतका अध्ययन किया सो समस्त निरर्थक होयगे । तातैं इस मरणके अवसरमे कदाचित् सावधानी मत बिगाड़ो ।

जीर्ण शरीर से प्रीति अच्छी नहीं

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जनवादः ।
चिरतरशरीरनाशे नवतरलाभे च किं भीरुः ॥१७॥

अति परिचित होते रुचि घटती, नव रुचि होती यह लोक कथन ।
चिरतर शरीर का नाश, लाभ-नव तन का, फिर क्यो भय रे मन ॥१७॥

अर्थ :—लोकनिका ऐसा कहना है जो जिस वस्तुका अतिपरिचय

अतिसेवन होजाय तिसमें अवज्ञा अनादर होजाय है, रुचि घटि जाय है, अर नवीनका सगममे प्रीति होय है, यह बात प्रसिद्ध है। अर हे जीव, तू इस शरीरको चिरकालसे सेवन किया, अब याका नाश होतै अर नवीन शरीर का लाभ होतैं भय कैसै करो हो ? भय करना उचित नाही।

भावार्थ :— जिस शरीरकूं बहुत काल भोगि जीर्ण कर दीना, सार-रहित बल-रहित हो गया अर नवीन उज्जवल देह धारण करने का अवसर आया, अब भय कैसे करो हो ? यो जीर्ण देह तो विनशै-होगो। इसमें ममता धारि मरण बिगाड़ि दुर्गतिका कारण कर्मबन्ध मत करो।

समाधिमरण से उत्तमगति की प्राप्ति

स्वर्गादेत्य पवित्रनिर्मलकुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्तिविधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्।
भुक्त्वा भोगमहर्निशं परकृतं स्थित्वा क्षण मडले,
पात्रावेशविसर्जनामिव मृति सन्तो लभन्ते स्वतः ॥१८॥

पा शुभ मरण, स्वर्ग मे हो या जन्म पूत सत्कुल मे लेता।
निज बन्धु आदि जनको बहुविधि, वांछानुरूप है फल देता ॥
फिर पूर्व सु-कृत फल भोग भोग, यह क्षिति-मण्डल से हैं जाता।
अभिनेता वेश-विसर्जनवत् यह मोक्ष स्वतः ही है पाता ॥१८॥

अर्थ :—ऐसै जो भयरहित होय समाधिमरणमे उत्साह-सहित चार आराधनानिको आराधि मरण करै है ताके स्वर्गलोक विना अन्य गति नाही होय है, स्वर्गनिमे महर्द्धिक देव ही होय है, ऐसा निश्चय है। बहुरि स्वर्गमे आयुका अन्तपर्यन्त महासुख भोगि करिकै इस मनुष्यलोकविषै पुण्यरूप निर्मल कुलमे अनेक लोकनिकरि चिंतवन करते-करते जन्म लेय अपने सेवकजन तथा कुटुम्व परिवार मित्रादि जननिकूं नानाप्रकारके वांछित धन भोगादिरूप फल देय अर पुण्य-करि उपजे भोगनिकू निरतर भोगि आयुप्रमाण थोडे काल पृथ्वी-मडल मे संयमादिसहित वीतरागरूप भये तिष्ठ करिकै जैसें नृत्यके अखाडेमे नृत्य करनेवाला पुरुष लोकनिके आनन्द उपजाय निकल

जाय है तैसें वह सत्पुष सकल लोकनिके आनन्द उपजाय स्वयमेव देह त्यागि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ।१८।

दोहा

मृयुमहोत्सव वचनिका, लिखी "सदासुख" काम ।
शुभ आराधनमरण करि, पाऊ निज सुखधाम ॥१॥

उगणीसं ठारा शुकल, पंचमि मास असाढ़ ।
पूरन लिखि वांचो सदा, मन धरि सम्यक गाढ़ ॥२॥

अमर भये न मरैंगे ॥

अब हम अमर भये न मरैंगे ॥टेक॥
तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यो करि देह धरैंगे ॥
अब हम अमर भये०

उपजे मरै काल तै प्रानी, तातैं काल हरैंगे ।
राग द्वेष जग बंध करत है, इनको नाश करैंगे ॥
अब हम अमर भये०

देह विनाशी, मैं अविनाशी भेद ज्ञान पकरैंगे ।
नासी जासी हम थिर वासी, चोखे हो निखरैंगे ॥
अब हम अमर भये०

मरे अनन्त बार बिन समझैं, अब सब दुख बिसरैंगे ।
'द्यानत' निपट निकट दो अक्षर, बिन सुमरैं सुमरैंगे ॥
अब हम अमर भये०

२ सल्लेखना

आचार्य समन्तभद्र

टीकाकर–पं. सदासुखदास जी

प्रथम सल्लेखना का अवसर का वर्णन करनेकूं सूत्र कहै है :—

सल्लेखना का लक्षण

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥

अर्थ :—जाका इलाज नाही दीखै, मिटनेका प्रतीकार नाही दीखै, ऐसा उपसर्ग होतैं, दुर्भिक्ष होतैं, जरा होतैं, रोग होतैं जो धर्मकी रक्षाके अर्थि शरीरका त्याग करना ताहि गणधरदेव सल्लेखना कहै है । जातै देहमे रहना अर देहकी रक्षा करना तो धर्मके धारनै के अर्थि है, मनुष्यपना, इन्द्रिय अर मन इत्यादि पावना सो समस्त धर्मके पालनैतैं सफल है । अर जहां धर्महीका नाश दीखैं जो अब धर्म नाही रहेगा, श्रद्धान ज्ञान चारित्र नष्ट हो जायगा, ऐसा निश्चय हो जाय, तहा **धर्मकी रक्षाके अर्थि देहका त्याग करना सो सल्लेखना है ।**

कोऊ पूर्वजन्मका बैरी, असुर, पिशाचादिक देव उपसर्ग आय करै तथा दुष्ट बैरी वा भील, म्लेच्छादिक तथा सिंह, व्याघ्र, गज, सर्पादिक दुष्ट तिर्यञ्चनि कृत उपसर्ग आया होय अथवा प्राणनिका नाश करनेवाला पवन, वर्षा, गडा, तथा शीत, उष्णता, धूप, अग्नि, पाषाण जलादिकृत उपसर्ग आया होय, तथा दुष्ट कुटुम्बके बाधवादिक स्नेहतैं वा मिथ्यात्वकी प्रबलतातैं तथा अपने भरण पोषणके लोभतैं चारित्र धर्मके नाश करनेकूं उद्यमी होय, तथा दुष्ट राजा, राजाका मन्त्री इत्यादिकनिकृत उपसर्ग आवै तो तहा सल्लेखना करै ।

बहुरि निर्जन वनमे दिशा भूल हो जाय, मार्ग नाही पावै, बहुरि अन्न-पान जामे मिलनेका नाही दुर्भिक्ष आ जाय, बहुरि समस्त

देहकू जीर्ण करनेवाली, नेत्र-कर्णादिक इन्द्रियनिकू नष्ट करनेवाली, जघा-बल नष्ट करनेवाली, हस्त पादादिकनिकू शिथिल असमर्थ करने वाली जरा आजाय तिस कालमे सल्लेखना करना उचित है।

बहुरि असाध्य रोग आय गया होय प्रबल ज्वर अतीसार तथा स्वास, कास, कफका वधना तथा वात-पित्तादिककी प्रबलता होय, तथा अग्निकी मन्दताकरि क्षुधाका घटना होय, रुधिरका नाश होना होय, तथा कठोदर, सोजा इत्यादिक विकारकी प्रबलता होय, तथा रोगकी दिन दिन बृद्धि होय, तदि शीघ्र ही धैर्य धारण करि उत्साह-सहित सल्लेखना करना योग्य है।

ये अवश्य मरणके कारण आय प्राप्त होय तहा च्यारि आराधनाका शरण ग्रहण करि समस्त देह, गृह, कुटुम्बादिकतै ममत्व छाडि, अनुक्रमतै आहारादिकनिका त्यागकरि देहकू त्यागना। देह विनशि जाय अर आत्माका स्वभाव दर्शन ज्ञान चारित्र जैसै नाही विनशै तैसै यत्न करना। यो देह तो विनाशीक है, अवश्य विनशैगा, कोट्यां यत्नतै देव दानव, मंत्र, तत्र, मणि, औषधादिक कोऊ रक्षा नाही करेगा। देह तो अनन्त भव-धारण करि छाडे है, यो रत्नत्रय धर्म अनन्त-भवनि मे नाही प्राप्त हुआ, यातै दुर्लभ है, ससार परिभ्रमणतै रक्षा करनेवाला है, ऐसा धर्म मेरे परलोकपर्यन्त मति मलीन होहू। ऐसा निश्चय धरि देहतै ममता छाडि पण्डितमरण के अर्थि उद्यम करै।

अब समाधिमरणकी महिमा कहनेकूं सूत्र कहै है'—

समाधिमरणकी महिमा

अंतःक्रियाधिकरणं तप.फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम्॥

अर्थ :—अन्तक्रिया जो सन्यासमरण सो ही जाका आधार होय तिस तपके फलकू सकलदर्शी सर्वज्ञ भगवान स्तुवते कहिये प्रशसा करते हैं। जिस तप करनेवाले के तपके फलतै अन्तमें सन्यासमरण नाहीं भया सो तप निष्फल है। तातै जेता आपका सामर्थ्य होय तेता समाधिमरण करनेमे प्रकृष्टयत्न करना योग्य है।

भावार्थ :—तप व्रत संयम करने का फल लोकमें अनेक है। तप करनेका फल देवलोक है, तथा मिथ्यादृष्टिके तपके प्रभावतै नवग्रैवेयक पर्यन्तमें अहमिंद्र होना हू है, महान ऋद्धि संपदा हू है। तपका फल चक्रवर्तीपना, नारायणपना, वलभद्रपना, राजेन्द्रपना, विभव सपदारूप निरोगपना, वलवालपना, अनेक प्रकार है। अखण्ड आज्ञा, ऐश्वर्य, ऋद्धि, विभव परिवार समस्त ये तपका फल है। सो अन्तमे समाधिमरण विना समस्त देवादिकनिकी सपदा अनेक वार भोगि-भोगि ससारमे परिभ्रमण ही किया, परन्तु तप करिकै जो अन्त-समाधि मरणकी विधितै आराधनाका शरणसहित, भयरहित मरण किया, तिस तपका फलकू सर्वदर्शी भगवान प्रशसा करै है।

जातै कोटिपूर्वपर्यन्त तप किया, अर अन्तकालमें जाका मरण विगड़ि गया, ताकि तप प्रशंसा-योग्य नाही। तप करनेतै देवलोक मनुष्यलोककी सपदा पा जाय, परन्तु मरणकालमे आराधना के नष्ट होनेतै ससारपरिभ्रमण ही करैगा। जैसे अनेक दूर देशनिमे बहुत धन उपार्जन किया, परन्तु अपने नगरके समीप आय धन लुटाय-दरिद्री होय है तैसे समस्त पर्यायमे तप व्रत सयम धारण करकै हू जो अन्तकालमे आराधना नष्ट करि दीनी तो अनेक जन्म-मरण करनेका ही पात्र होयगा।

अव सन्यास करनेका प्रारम्भमे कहा करै ? सो कहनेकू सूत्र कहै है .—

सल्लेखना धारक क्षमा करे और क्षमा मांगे

> स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
> स्वजनं परिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥

अर्थ —अव स्नेह अर वैर संग परिग्रह इनूंका त्यागकरि शुद्धमन होय स्वजन अर परिकर के जन तिनमे क्षमा ग्रहण करिकै अर समस्त परिकरके जनकूं आप हू प्रिय हित वचन करिकै क्षमा ग्रहण करावै।

सम्यग्दृष्टिके स्नेह अर वैर दोऊनिका अभाव होय है। सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचारै है:—जो इस पर्यायमे कर्मके वशतै मैं आय उपज्या अर जो पर्यायका उपकारक तथा अपकारक द्रव्यनिकू पुण्य पाप कर्मका

उदयके आधीन जे बाह्य स्त्री पुत्रादिक थे तिनमे पर्यायके उपकारका अर्थि दान सन्मानादिकरि स्नेह किया, अर जे इस पर्यायके उपकारक द्रव्यनिकू नष्ट करनेवाले थे तिनकू चारित्रमोहके उदयकरि वैरी मान्या, उनतैं पराङ्मुख होय रह्या। अब इस पर्यायका विनाश होनेका अवसर आया अब कौनसू स्नेह करू अर कौनसू वैर करू ? मेरा इनका आत्माके सबध तो है ही नाही। मै इनू का आत्माकू जानू नाहीं, ये लोक हमारे आत्माकू जाने नाही, केवल हमारा इनू का चामडा दीखनेमे आवै है, यातै चामड़ाहीसू मित्र शत्रु का सबध है, सो ये चाम भस्म होय एक-एक परमाणु उड़ि जायगे। अब कौनसूं स्नेहे वैरका सकल्प करिये ?

अर जे कोऊ आपसूं बिना-कारण अभिमानसू बैर करनेवाले है तिनसू नम्रीभूत होय क्षमा ग्रहण करावै—जो मेरी भूल चूक भई है जो मैं आप सारिखनितै अपूठा होय रह्या, मैं अज्ञ आपसू प्रार्थना करु हू। मेरा अपराध क्षमा करो, आप सारिखे सज्जननि बिना कौन बकसीस करै।

अर जो आप किसी का धन धरती दाब लई होय तो उनकू देय राजी करै—जो मै दुष्टताकरि आपका धन राख्या, तथा जमीन जायगा खोसी, सो अब ये आपकी ग्रहण करो। मैं पापी हू दुष्टता-करि छलकरि लोभकरि अध भया दुराचार किया, अब मैं अतरगमे पश्चात्ताप करूं हू, आपकू बडा दुख उपजाया, अब जो अपराध किया सो तो कोऊ प्रकार उल्टा आवै नाही, अब मैं कहा करू, आप माफ करो। इत्यादिक सरल भावनितै क्षमा ग्रहण करावै।

अर जे अपने कुटुम्ब मित्रादिक स्नेहवान होय, तिनसू कहै—तुम हमारे सम्बन्धी स्नेही हो परन्तु तुम्हारे हमारे इस पर्यायका सम्बन्ध है सो थे (तुम) इस देहका उपजावनेवाला माता पिता हो, इस देहतै उपजे पुत्र पुत्री हो, इस देहके रमावनेवाली स्त्री हो, इस देहके कुलके सम्बन्धी बन्धुजन हो, तुम्हारे हमारे इस विनाशीक पर्यायका सम्बन्ध एते काल रहचा, अर यो पर्याय आयुके आधीन है अब अवश्य विनशैगा, अब विनाशीकतै स्नेह करना वृथा है। इस देहतै स्नेह करो तो यो रहनेको नाही, यो तो अग्नि आदिकतै भस्म हो समस्त

बिखरि जायगा। अर मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अविनाशी है, अखंड है, मेरा निजरूप है, निज स्वभावका विनाश नाही। **जाका संयोग है ताका अवश्य वियोग है,** अर जो अनेक पुद्गल परमाणु मिलकरि उपज्या ताका अवश्य विनाश होय ही, तातें इस विनाशीक अज्ञान जड़स्वरूप मेरे पुद्गलतैं स्नेह छाडि मेरे अविनाशी ज्ञायक आत्माका उपकार करनेमे उद्यमी होना योग्य है। जैसें मेरा ज्ञान दर्शन स्वभाव आत्मा का रागद्वेषमोहादिकतैं घात नाही होय, अर ज्ञानादिककी उज्ज्वलता प्रकट होय, वीतराग निज स्वभावकी प्राप्ति होय, तैसें यत्न करना।

ये पर्याय तो अनंतानंत धारण करि छांड़ी है, मैं दर्शन-ज्ञान चारित्रकी विपरीततातें च्यारि गतिनिमे परिभ्रमण किया। कहा मेरा सकलका ज्ञाता सर्वज्ञस्वरूप, अर कहा एकेन्द्रिय पर्यायमे अक्षरके अनतवे भाग ज्ञान का रहना? तथा अनत शक्ति अतराय कर्मके उदयतें नष्ट होय, पृथ्वी पाषाण जल अग्नि पवन वनस्पतिरूप पच-स्थावररूप धरना, विकलत्रय होना, **ये समस्त मिथ्या श्रद्धान ज्ञान आचरणका प्रभाव है।**

अब अनतानंतकाल में कर्मके बडे क्षयोपशमतैं वीतरागका स्याद्वादरूप उपदेशतें मेरे किंचित् स्वरूप पररूपका जानना भया है, तातैं भो सज्जन हो! अब ऐसा स्नेह करो जैसें मेरा आत्मा रागद्वेप मोहरहित हुआ निर्भय हुआ देहका त्याग आराधनाका शरणसहित करै। जातैं अनादिकालतें **अनंतानंत मिथ्यात्वसहित बालमरण किया जो एक बार भी पण्डितमरण करता तो फेर मरण का पात्र नाहीं होता।** तातैं अव देहतैं स्नेहादिक छाडि जैसें मेरा आत्मा रागादिक-निके वश होय संसार समुद्र मे नाही डूबै तैसै यत्न करना उचित है। ऐसे स्नेह वैरादिक छाड़ि अर देह-परिग्रहादिकका राग छाडि शुद्ध मन करो।

बहुरि समाधिमरणका इच्छुक कहा करै? सौ सूत्र कहै है—

सल्लेखना धारक मरण पर्यन्त महाव्रत धारण करे

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम्॥

अर्थ :—बहुरि जो पाप अपराध आप किया, तथा अन्यतै कराया होय तथा करतेनिकूं अच्छा जाना होय, तिस अपराधकू एकान्तमे निर्दोष वीतराग ज्ञानी गुरुनितै कपटरहित आलोचना करके अर मरण पर्यन्त समस्त महाव्रत आरोपण करै, ग्रहण करै।

भावार्थ :—वीतराग निर्दोष गुरुनिका सयोग प्राप्त होजाय, अर अपना रागादिकषाय घटि जाय, अर परीषहादिक सहनेमें अपना शरीर मन समर्थ होय, धैर्यादि गुणका धारक होय, निर्ग्रन्थ वीतराग गुरु निर्वाह करनेकूं समर्थ होय, देश काल सहायादिकका शुद्ध संयोग होय, तो महाव्रत अंगीकार करै। अर बाह्य अभ्यतर सामग्री नाही होय तो अपने परिणाममे ही भगवान पचपरमेष्ठीका ध्यान करि अरहतादिकतै आलोचना करै। अपनी योग्यताप्रमाण समस्त पञ्च पापनिका त्यागकरि गृहमे तिष्ठता ही महाव्रती तुल्य हुआ रोगादिक वेदनाकू कायरता रहित बड़ा धैर्यतै सहता दु खरूप वेदनाकू बाह्य नाही प्रकट करता सहै। कर्मके उदयकू अपना स्वभावतै भिन्न जानता, समस्त शत्रु मित्र सयोग वियोगमे साम्यभाव धारता, परिग्रहादिक उपाधिकू त्यागिकरि विकल्परहित तिष्ठै है।

जातै ऐसा जानना—जो सन्यासका अवसर जानि परिग्रहका त्याग करै। तहा जो प्रथम तो किसीका देना ऋण होय तो ताकूं देय ऋणरहित होजाय, बहुरि किसीकी धनादिक तथा जमी जायगा आप अनीतिसू ली होय तो ताकू पाछी देय, वाकै सतोष उपजाय, अपना अपराध क्षमा कराय, आपकी निन्दा गर्हा करै। बहुरि जो धन परिग्रह होय ताका विभाग करिकै देय निराकुल होजाय। स्त्री को विभागकरि स्त्रीनै देवै, पुत्रनिका विभाग पुत्रनिको देवै, पुत्रीका विभाग होय पुत्रीकू देवै, दु खित दीन अनाथ विधवा ऐसे आपके आश्रय वहिन भुवा बन्धु इत्यादि होय तिनकूं देय समस्त परिग्रह त्यागि ममतारहित होय देहका सस्कारका त्याग करै, स्त्री पुत्र गृहादिक समस्त कुटुम्बमे शय्या आसन वस्त्रादिकनिमे ममताकूं छोड़ै, जो हमारा इनका अब केताक सम्बन्ध है जिस देहका सवन्धीनितै सबन्ध था उस देहकू ही अब हम छाड़े हैं तब देहका सवन्धतै हमारै काहेकी ममता ?

अब हमारा आत्माका संबन्ध तो अपने स्वभावरूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्रतै है जो हमारा निज स्वभाव है। देह तो चाम हाड मास रुधिरमय कृतघ्न है, जड है, ये हमारा नाही, हम इनका नाही। देह विनाशीक है, हमारा रूप अविनाशी है, हमारे तो अज्ञान भावतै यामे ममता रही ताकरि अशुभ कर्मनिका बन्ध किया। अब ऐसा देहका सबन्ध का नाशकूं वांछा करू हूं। **देहका ममत्वतै हो अनन्त जन्म मरण भये हैं अर संसारके जितने दुःखनिके प्रकार हैं ते समस्त देहके संगमतै ही मेरे हैं। राग द्वेष मोह काम क्रोधादिकनिका उत्पत्तिका कारण हू एक देहका सम्बन्ध ही है।** एसै देहतै विरागताकूं प्राप्त होय समस्त व्रतनिकी दृढता धारण करै।

बहुरि कहा करै सो कहै है :—

सल्लेखना धारक मन प्रसन्न रखे

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥

अर्थ :—सन्यासके अवसरमे शोक भय विषाद स्नेह कलुषपना अरति इत्यादिकनिकू छाडि करिकै कायरपनाका अभाव करो, अपना आत्मसत्त्वका प्रकाश करिकै अर श्रुतरूप अमृतकरि मन जो है ताहि प्रसन्न करै।

भावार्थ :—अनादिकालतै ही पर्यायमे ससारीके आत्मबुद्धि लगि रही है अर पर्याय का नाशकूं ही अपना नाश मानै है। जव पर्यायिका नाश होना अर धन परिग्रह स्त्री पुत्र मित्र वाधवादिक समस्त सयोगका वियोग होना दीखै है तब **मिथ्यादृष्टिकै बड़ा शोक उपजै है।**

सम्यग्दृष्टिकै शोक नाहीं उपजै है। ऐसा विचार करै है :- जो हे आत्मन! पर्याय तो अनन्तानन्त ग्रहण होय होयकै छूटी है, यो देह रोगनिका उत्पत्तिका स्थान है अर नित्य ही क्षुधा तृषा शीत उष्ण भयादिक उपजावनेवाला है, महाकृतघ्न है, अवश्य विनाशीक है आत्माकै समस्त प्रकार दुःख क्लेशादि उपजावने वाला है, दुष्टकै सगमकी ज्यो त्यागने योग्य है, समस्त दुःखनिका बीज है, महा

सताप उद्वेगका उपजावनेवाला है, सदाकाल भयका उपजावनेवाला है, बदीगृहसमान पराधीन करनेवाला है, जेती दु.खनिकी जाति है ते समस्त वाकै सगमतै भोगिये है। आत्मस्वरूपकू भुलावनेवाला है, चाहकी दाहका उपजावनेवाला है, महामलीन है, कृमिनिका समूहकरि भरया महादुर्गन्धमय है, दुष्ट भ्राता की ज्यो नित्य क्लेशानिके उपजावनेकू समर्थ अनमारण शत्रु है, ऐसे देह का वियोग होने का बडा शोक है ? यातै ज्ञानी शोक कू छाड़ै है, मरण का भय नाही करै है विषाद स्नेह कलुषपना तथा अरतिभावकू त्यागकरि अर उत्साह धैर्य प्रकट करके श्रुतज्ञानरूप अमृतका पानकरि मनकू तृप्ति करै है।

अब इहां सल्लेखना दोय प्रकार हैं :—एक कायसल्लेखना एक कषायसल्लेखना। इहा सल्लेखना नाम सम्यक् प्रकारकरि कृश करने का है। तहा जो देहका कृश करना सो तो कायसल्लेखना है, क्योकि इस कायकूं ज्यो पुष्ट करो, सुखिया राखो त्यो इन्द्रियनिके विषया की तीव्र लालसा उपजावै है, आत्मविशुद्धताकू नष्ट करै है, काम लोभादिककी वृद्धि करै है, निद्रा प्रमाद आलस्यादिक बधावै है, परीषह सहनेमे असमर्थ होय है, त्याग सयमकै सन्मुख नाही होय है, आत्माकू दुर्गतिमे गमन करावै है, बात पित्त कफादि अनेक रोगनिकू उपजाय महा दुर्ध्यान कराय ससारपरिभ्रमण करावै है।

यातै अनशनादि तपश्चरण करि इस शरीरकू कृश करना। रोगादिक वेदना नाही उपजै, परिणाम अचेत नाही होय यातै प्रथम कायसल्लेखना वर्णन करनेका सूत्र कहै है :

काय सल्लेखना

> **आहारं परिहाप्य क्रमश. स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।**
> **स्निग्धं च हापयित्था खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥**
> **खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।**
> **पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥**

अर्थ .—कायसल्लेखना करै सो अनुक्रमतै करै। अपना आयुका अवसर दीखै तिस प्रमाण, देहसू इन्द्रियास्यू ममत्वरहित हुआ आहारके आस्वादनतै विरक्त होय विचार करै .—

जो हे आत्मन् ! संसार परिभ्रमण करता तू एता आहार किया जो एक-एक जन्मका एक-एक कणकू एकठा करिये तो अनन्त सुमेरु-प्रमाण हो जाय, अर अनन्त जन्मनिमे एता जल पिया जो एक-एक जन्मकी एक-एक बून्द ग्रहण करिये तो अनन्त समुद्र भरि जांय। एते आहार जलसू ही तृप्त नाही भया तो अब रोग जरादिककरि प्रत्यक्ष मरण नजीक आया, अब इस अवसरमें किंचित् आहारतैं तृप्ति कैसे होयगी ?

अर इस पर्यायमे भी जन्म लिया ता दिनतै नित्य आहार ही ग्रहणकिया अर आहारका लोभी होयके ही घोर आरम्भ किया, अर आहार हीका लोभतै हिंसा असत्य परधन-लालसा अब्रह्म अरपरि-ग्रहका बहुत सगमकरि अर दुर्ध्यानादिककरि अनेक कुकर्म उपार्जन किये। आहार की गृद्धतातै ही दीन-वृत्ति करि पराधीन भया। अर आहारका लोभी होय भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नाही किया, रात्रि का दिनका योग्य का अयोग्यका विचार नाही किया। आहारका लोभी होय क्रोध अभिमान मायाचार लोभ याचनाकू प्राप्त हुआ। आहार की चाहकरि अपना बड़ापन अभिमान नष्ट किया। आहारका लोभी होय अनेक रोगनिका घोर दुःख सह्या। आहारका लोभी होय करिकै ही नीच जाति नीच कुलीनिकी सेवा करी। आहार का लोभी होय स्त्री के आधीन होय रह्या, पुत्रके आधीन होय रह्या। आहार का लपटी निर्लज्ज होय है, आचार-विचार-रहित होय है, आहारका लपटी कटि-कटि मरै है, दुर्वचन सहै है। आहार के अर्थि ही तिर्यञ्चगतिमें परस्पर मरै हैं, भक्षण करै है।

बहुत कहनेकरि कहा:—अब अल्पकाल इस पर्यायमे हमारे बाकी रह्या है तातै रसनिमे गृद्धिता छांड़ि अर रसनाइन्द्रियकी लालसा छाडि, आहारका त्याग करनेमे उद्यमी नाही होऊगा तो व्रत सयम धर्म यश परलोक इनकूं बिगाड़ि कुमरणकरि ससारमे परिभ्रमण करूंगा। अर ऐसा निश्चय करकै ही अतृप्तता का करनेवाला आहारका त्यागके अर्थि कोऊ काल मे उपवास, कदे बेला, कदे तेला, कदे एक बार आहार करना, कदे नीरस आहार, अल्प आहार इत्यादिक क्रमतै अपनी शक्तिप्रमाण अर आयुकी स्थिति प्रमाण

आहारकूं घटाय अर दुग्धादिकहीकूं पीवै। वहुरि क्रमतैं दुग्धादिक सचिक्कणका हूं त्यागकरि छाछि वा तप्त जलादिक ही ग्रहण करै, पाछै क्रमतैं जलादिक समस्त आहारका त्यागकरि अपनी शक्तिप्रमाण उपवास करता पच नमस्कारमे मनकूं लीनकरि धर्मध्यानरूप हुआ वडा यत्नतैं देहकूं त्यागै सो सल्लेखना जाननी। ऐसैं कायसल्लेखना वर्णन करी।

समाधिमरण में आत्मघात का अभाव है

अब इहां कोऊ प्रश्न करे :—यो आहारादिक त्यागकरि मरण करना सो आत्मघात है, आत्मघात करना अयोग्य कह्या है।

ताकूं उत्तर कहैं है :—

जाकै बहुत काल सुख करिकै मुनिपना व श्रावकपना तथा महाव्रत अणुव्रत पलता दीखै, अर स्वाध्याय ध्यान दानशील तप व्रत उपवासादि पलता होय, तथा जिनपूजन स्वाध्याय धर्मोपदेश धर्मश्रवण चार आराधनाका सेवन अच्छी तरह निर्विघ्न सधता होय, अर दुर्भिक्षादिकनिका भय हू नाही आया होय, असाध्य रोग शरीरमे नाही आया होय, तथा स्मरणनै ज्ञाननै नष्ट करने वाली जरा हू नाही प्राप्त भई होय, अर दशलक्षण रत्नत्रयधर्म देह देहसू पलता होय, ताकूं आहार त्यागि सन्यास करना योग्य नाही। धर्म सधता हू आहार त्यागि मरण करै है सो धर्मतैं पराड्मुख भया त्याग व्रत शील सयमादिकरि मोक्षका साधक उत्तम मनुष्य पर्यायतैं विरक्त हुआ अपनी दीर्घ आयु होते हू अर धर्म सेवन बनते हू आहारादिकका त्याग करै सो आत्मघाती होय है।

जातैं धर्मसयुक्त शरीरकी बडी यत्नतैं रक्षा करना, ऐसी भगवान की आज्ञा है। अर धर्मके सेवनेका सहकारी ऐसा देहकू आहार त्यागकरि छाडि देगा, तदि कहा देव नारकी तिर्यञ्चनिका देह सयमरहित तिनतैं व्रत तप सयम सधैगा? रत्नत्रयका साधक तो मनुष्यदेह ही है, अर धर्मका साधक मनुष्यदेहकू आहारादिक त्यागकरि छाड़ै है ताकै कहा कार्य सिद्ध होय है? इस देहकूं त्यागनेतैं हमारा कहा प्रयोजन सधैगा? नवीन देह व्रतधर्मरहित और धारण करेगा। परन्तु अनन्तानन्त देह धारण करावनेका बीज जो कार्माणदेह कर्म-

मय है ताकूं मिथ्यात्व असयम कषायादिकका परिहार करि मारो, आहारादिक का त्यागतै तो औदारिक हाड़ मासमय शरीर मरि नवीन अन्य उपजैगा। अष्टकर्ममय कार्माणदेह मरैगा तदि जन्म मरणतैं छूटोगे। यातै कर्ममय देहके मारनेकू इस मनुष्य शरीरकूं त्याग व्रत सयममे दृढता धारणकरि आत्मा का कल्याण करो। अर **जब धर्म रहता नाहीं दीखै तब ममत्व छांड़ि अवश्य विनशीक देह कूं त्यागने मे ममता नाही धरना।**

कषाय सल्लेखना

अब जैसै कायका तपश्चरणकरि कृश करना तैसै रागद्वेषमोहादिक कषायका हू साथ ही कृषपना करना सो कषायसल्लेखना है। कषायनिकी सल्लेखन बिना कायसल्लेखना वृथा है। कायका कृशपना तो रोगी दरिद्रो पराधीनतातै मिथ्यादृष्टि के हू होय है। जो देहके साथि रागद्वेष मोहादिकनिकू कृशकरि, इसलोक परलोक सम्बन्धी समस्त, वाछाका अभावकरि, देहके मरणमे कुटुम्ब परिग्रहादिक समस्त परद्रव्यनितै ममता छाड़ि, परम वीतरागतातै सयमसहित मरण करना सो कषायसल्लेखना है।

इहां ऐसा विशेष जानना :—जो विषय-कषायनिका जीतनेवाला होगया तिसहीकै समाधिमरणकी योग्यता है। विषयनिके आधीन अर कषाययुक्तके समाधिमरण नाही होय है। ससारी जीवनिकै ये विषय कषाय बड़े प्रबल है। सामर्थ्यधारीनिकरि नाही जीते जाय है। अर बडे प्रबल बल के धारक चक्रीनारायण, वलभद्रादिकनिकूं भ्रष्टकरि आपके आधीन किये तातै अति प्रबल है।

ससार मे जेते दु.ख है तितने विषयके लम्पटी अभिमानी तथा लोभीकै होय हैं। केते जीव जिनदीक्षा धारण करकै हू विषयनिकी आतापतै भ्रष्ट होय है, अभिमान लोभ नाही छाडि सकै है। अनादिकालतै विपयनिकी लालसाकरि लिप्त अर कषायनिकरि प्रज्वलित ससारी आपा भूलि स्वरूपतै भ्रष्ट होय रहे है। यातै विषय कषायनितै वीतरागताका का कारण श्रीभगवती आराधनाजीमे विपय कषायनिका स्वरूप विस्तार सहित परम निर्ग्रन्थ श्रीशिवायन नाग

आचार्यने प्रकट दिखाया है। सो वीतरागका इच्छुक पुरुषनिकू ऐसा परम उपकार करनेवाला ग्रन्थका निरन्तर अभ्यास करना। समाधि-मरणका अवसरमे जीवका कल्याण करनेवाला उपदेशरूप अमृतकू सहस्रधाररूप होय वर्षा करता भगवती आराधना नाम ग्रन्थ है। ताका शरण अवश्य ग्रहण करने योग्य है। याहीतें इहां आराधना मरणका कथन अवसर पाय भगवती आराधना का अर्थका लेश लेय लिखिये है।

यहां ऐसा विशेष जानना :— जो साधु मुनीश्वरनिके तो रत्न-त्रयधर्म की रक्षा करनेका सहायी आचर्यादिकनिका सघ तथा वैया-वृत्य करनेवाले धर्मके उपदेश देनेवाले निर्यापकनिका वडा सहाय है तदि बर्मनिका विजयकरि आराधनाकूं प्राप्त होय है। याहीतें गृहस्थीनिकू हू धर्मवृद्ध श्रद्धानी ऐसा साधर्मीनिका समागम अवश्य मिलाना चाहिये परन्तु यो **पंचमकाल अति विषम है**। यामे विषया-नुरागीनिका तथा कषायीनिका सगम सुलभ है, तथा रागद्वेष शोक भयका उपजानेवाला, आर्तध्यानका वधावनेवाला, असयममे प्रवृत्ति करावनेवालेनिका ही सगम बनि रह्या है। जातें स्त्री-पुत्र मित्र बांधवादिक समस्त अपने राग-द्वेप विषय-कषायनिमे लगाया आपा भुलावनेवाले हैं। समस्त अपना विषय कषाय पुष्ट करनेका इच्छुक हैं। **धर्मानुरागी धर्मात्मा परोपकारी वात्सल्यताका धारी करुणारस-करि भोजेनिका संगम महा-उज्ज्वल पुण्यके उदयतैं मिलै है।**

तथा अपना पुरुषार्थतें उत्तम पुरुपनिका उपदेशका सगम मिला-वना, अर स्नेह मोहकी पासीनिमे उलभावनेवाले धर्मरहित स्त्री-पुरुषनिका सगमका दूरहीतें परित्याग करना, अर अवशतें कुसगो आजाय तो तिनसौ वचनालापका त्यागकरि मौनी होय रहना, अर अपना कर्मके आधीन देश कालके योग्य जो स्थान होय तीमे शयन आसन करना, अर जिनसूत्रनिका परम शरण ग्रहण करना, जिन-सिद्धातका उपदेश धर्मात्मानितें श्रवण करना, त्याग, सयम, शुभ-ध्यान, भावानाकूं विस्मरण नाही होना, अर धर्मात्मा साधर्मी हू अपने अर परके धर्मकी पुष्टता चाहता, अर धर्मकी प्रभावना वाछता धर्मोपदेशादिरूप वैयावृत्यमे आलसी नाही होय। त्याग, व्रत, सयम, शुभध्यान, शुभभावनामे ही आराधक साधर्मीकूं लीन करै।

अर कोऊ आराधक ज्ञानसहित हू कर्मके तीव्र उदयतै तीव्र रोगादिक क्षुधा तृषादिक परिषहनिके सहने मे असमर्थ होय व्रतनिकी प्रतिज्ञातै चलि जाय तथा अयोग्य वचनहू कहने लगि जाय, तथा रुदनादिकरूप विलापरूप आर्तपरिणामरूप हो जाय, तो साधर्मी बुद्धिमान पुरुष ताका तिरस्कार नाही करै, कटुवचन नाही कहै, कठोर वचन नाही कहै। जातै वेदना करि दुःखित होय अर पाछै तिरस्कारका अवज्ञाका वचन सुनै तदि मानसिक दु.खतै दुर्ध्यानकूं प्राप्त होय चलायमान हो जाय, विपरीत आचरण करै, तथा आत्मघात करै। तातै आराधकका तिरस्कार करना योग्य नाही।

उपदेशदाता है सो महान धीरता धारणकरि आराधककूं स्नेह भरा वचन कहै, मिष्ठ वचन कहै, हृदयमे प्रवेश करि जाय, श्रवण करते ही समस्त दु ख विस्मरण हो जाय, करुणारसतै उपकार बुद्धितै भरा वचन कहै।

हम न किसी के....

हम न किसी के कोई न हमारा, झूठा है जग का व्योहारा।
तन सम्बन्धी सब परवारा, सो तन हमने जाना न्यारा॥
हम न किसी के०

पुण्य उदय सुखका बढ़वारा, पाप उदय दुख होत अपारा।
पाप पुण्य दोऊ संसारा, मै सब देखन हारा॥
हम न किसी के०

मैं तिहुं जग तिहुं काल अकेला, पर संजोग भया बहु मेला।
थिति पूरी करि खिर खिर जाहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं॥
हम न किसी के०

राग भाव तै सज्जन मानै, द्वेष भाव तै दुर्जन जानै।
राग-द्वेष दोऊ मम नाहीं, 'द्यानत' मै चेतन पदमाही॥
हम न किसी के०

३ समाधिधारक को सम्बोधन

आचार्य समन्तभद्र

टीकाकार—पं. सदासुखदास जी

भो धर्मके इच्छुक ! अब सावधान होहू, पूर्वकर्मके उदयतै रोग वेदना तथा महा व्याधि उपजी है, तथा परीपहनि का सताप उपज्या है, अर शरीर निर्बल भया है। आयुपूर्ण होनेका अवसर आया है, तातै अब दीन मति होहू। अब कायरता छाडि शूरपना ग्रहण करो। कायर भये दीन असाता कर्म नाही छाडैगा। कोऊ दु ख हरनेकू समर्थ नाही है। **असाताकूं दूरकरि साताकर्म देनेकूं कोऊ इन्द्र धरणेन्द्र जिनेन्द्र अहमिंद्र समर्थ हैं नाहीं,** यातै अब कायरता है तो दोऊ लोक नष्ट करनेवाला धर्मसूं पराङ् मुखता करै है। तातै धैर्य धारि क्लेशरहित होय भोगोगे तो पूर्व कर्मकी निर्जरा होयगी, नवीन कर्म बधका अभाव होयगा।

बहुरि तुम जिनधर्म धारक धर्मात्मा कहावो हो, समस्त तुमकू ज्ञानवान समझै है, धर्मके धारकनिमे विख्यात हो, अर व्रती हो, अर व्रत-सयमकी यथाशक्ति प्रतिज्ञा ग्रहण करी है, अब त्याग सयममे शिथिलता दिखावोगे तो तुम्हारा यश अर परलोक बिगडैहीगा परन्तु अन्य धर्मात्मानिका अर धर्मकी बडी निन्दा होयगी, अर अनेक भोले जीव धर्मके मार्गमे शिथिल हो जांयगे। जैसै कुलवान मानी सुभट लोकनिके मध्य भुजास्फालन करि पाछै वैरीकू सम्मुख आवतेही भयवान होय भागै तो अन्य लघु किकर कैसै थिरता धारै, अर दोय दिन जीया तो हू ताको जीवन हू धिक्कारयोग्य होय है। तैसै तुम त्यागव्रतसयमकी प्रतीज्ञा ग्रहणकरि अब शिथिल होवोगे तो निंद्यताके पात्र होवोगे, अर अशुभ कर्म हू नाही छाडैगा अर आगानै बहुत दु:खनिका कारण नवीन कर्मका ऐसा दृढ वन्ध करोगे जो असख्यातकालपर्यन्त तीव्र रस देगा।

अर जो तुम्हारे पूर्वै ऐसा अभिमान था—जो मैं जिनेन्द्रका भक्त जैनी हू, आज्ञाका प्रतिपालक हू, जिनेन्द्रके कहे व्रत-शील सयम धारण करू हूं, जो श्रद्धान ज्ञान आचरण अनन्त भवनिमे दुर्लभ है सो वीतराग गुरुनिके प्रसादतै प्राप्त भया है, ऐसा निश्चय करकै हू अब किंचित्

रोगजनित वेदना वा परीषह कर्मके उदय करि आवनेतैं कायर होय चलायमान होना अति लज्जाका कारण है। वेदनाका एता भय करो हो सो वेदनातैं मरण ही होयगा। मरण तो एक बार अवश्य होना ही है, जो देह धारया है सो अवश्य मरण करैहीगा।

अब जो वीतराग गुरुनिका उपदेश्या व्रत-सयमसहित कायरता-रहित उत्साह करि च्यारि आराधनाका शरणसहित जो मरण हो जाय तो इस समान त्रैलोक्यमें लाभ नाही तीन लोक की राज्यसपदा तो विनाशीक है, पराधीन है, आराधनाकी सपदा अनन्त सुख देने-वाली अविनाशी है। अर जिस भय-रहित धीरता-सहित मरणकूं मुनीश्वर आचार्य उपाध्याय चाहे हैं अर समस्त व्रती सयमी सम्यग्दृष्टि चाहै, अर तुम हू निरन्तर वांछा करै थे सो मनोवाछित समाधिमरण नजीक आगया, इस समान आनन्द कोऊ ही नाही है।

अर या वेदना बधै है सो तुम्हारा बडा उपकार करै है। वेदनातै देहमे राग नष्ट हो जायगा, पूर्व कर्म असातादिक बाधे थे तिनकी अल्पकालमे निर्जरा होयगी, दु ख रोगनितै भरया देहरुप बन्दीगृहतै जरुर निकसना होयगा, विषय भोगिनितै विरक्तता होयगी, परद्रव्य-नितैं ममता घटैगी, मरणका भय नाही रहैगा, मित्र पुत्र स्त्री बांध-वादिकनितै ममता नष्ट होयगी। इत्यादिक अनेक-अनेक उपकार वेदनातै हू जानहु। अर कायर हुआ वेदना बधैगी, सक्लेश बधैगा, कर्मका उदय है सो अब टलैगा नाही यातै अब दृढता ही धारण करनेका अवसर है।

अर कर्मका जीतना तो शूरपना धारण करै ही होयगा, कायर होय रोवोगे तड़फडाहट करोगे तो कर्म तुमकूं मारि तिर्यञ्चादिक कुगतिकूं प्राप्त करायेगा, अनेक दु खनिकूं प्राप्त होवोगे। जैसैं कुलका, साधर्मीनिका, धर्मका यश वृद्धिकूं प्राप्त होय अर तुम दु खके पात्र नाही होहू तैसैं प्रवर्त्तन करो। जैसे शूरवीर क्षत्रियकुलमै उपजै है ते सग्राममे शस्त्रनिकरि दृढ़ सतापित भये भृकुटीसहित मरण करैं है परन्तु वैरीनितें मुखकूं उलटा नाही फेरै है। तैसै परमवीतरागीनिका शरण ग्रहण करता पुरुष अशुभकर्मनिके अति प्रहारतै देह का त्याग करै है, परन्तु दीनता कायरताकूं प्राप्त नाही होय है। केई जिनलिंग

के धारक उत्तम पुरुषनिके दुष्ट वैरी चारों तरफ अग्नि लगाय दीनी ताकी घोरवेदना वचनके अगोचर, तिस अग्निमे सर्व तरफतै दग्ध होते हू अपना ऋण चुकने समान जानि, पच परमगुरुनिका शरण सहित धीरताकूं धारते दग्ध होय गये है, परन्तु कायरताकूं नाही धारे हैं। ऐसी आत्मज्ञानकी प्रभावना है।

जो इस कलेवरतै भिन्न अविनाशी अखण्ड ज्ञानस्वभाकूं अनुभव किया है तिस अनुभव करनेका फल अकंपपना भयरहितपना ही है। बहुरि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हू परलोकके सुखका अर्थी होय धैर्य धारण करै है, वेदनामे कायर नाही होय है, तदि ससार के समस्त दु खनिके नाश करनेका इच्छुक जिनधर्मके धारक तुम कायर होय आत्माका हितकू बिगाडो तथा उज्ज्वल यशकू मलीन करि दुर्गतिके पात्र कैसैं बनो ? तातै अब सावधान होय धर्मका शरण ग्रहण करि कर्मजनित वेदनाका विजय करो। ऐसा अवसर अनन्तभवनिमे हू नाही मिल्या है। या तीरां लागी नाव है, अब प्रमादी रहोगे तो डूब जायगी। समस्त पर्यायमे जो ज्ञानका अभ्यास किया, श्रद्धान की उज्ज्वलता करी, तप त्याग नियम धारचा सो इस अवसरके अर्थ धारे थे। अब अवसर आये शिथिल होय भ्रष्ट होओगे तो भ्रष्ट हुआ, अर समता छाडे रोग तथा मरण तो टलैगा नाही अपना आत्माकूं केवल दुर्गतिरूप अन्ध कीचमे डुबोवोगे।

बहुरि जो लोक मे मरी रोग आ जाय, तथा दुर्भिक्ष आ जाय, तथा भयानक गहन वनमे प्रवेश हो जाय, तथा दृढ भय आ जाय, तथा तीव्ररोग वेदना आजाय तो उत्तम कुलमे उपजे पूज्य सन्यास-मरण करै, परन्तु निंद्य आचरण नीच पुरुषनिकी ज्यो कदाचित् नाही करै। मरीके भयतै मदिरा नाही पीवै है, दुर्भिक्ष आ जाय तो मास-भक्षण नाही करै, कादा नाही खाय, नीच चाडालादिकनिकी उच्छिष्ट नाही भक्षण करै है। भय आ जाय तो म्लेच्छ भील नाही हो जाय है, कुकर्म हिंसादिक नाही करै है, तैसैं रोगादिकनिकी प्रबल त्रास होतै हू श्रावकधर्मका धारक जिनधर्मी कदाचित् अपने भावनिकूं विकाररूप नाही करै है। अर धर्मकी अर त्यागकी व्रतकी साधर्मी-निकी प्रभावनाका इच्छुक होय अन्तकालमे अपना श्रद्धान ज्ञान

आचरणकी उज्ज्वलता ही प्रगट करै तिनका जन्म सफल होय है, व्रत तप धर्म सफल होय है। जगत में प्रशसा कूं प्राप्त होय है। मरण-करि उत्तमदेवनि मे उपजै है।

अर मनुष्य पर्यायमे उत्तमपना भी येही है, जो घोर आपदा वेदना आवतै हू सुमेरुकी ज्यों अचल होय है, अर समुद्रकी ज्यों क्षोभ-रहित होय है। अर भो धर्मके आराधक! तुम अति घोर वेदनाके आवनेकरि आकुल मत होहू। **इस कलेवरतै भिन्न अपना ज्ञायक-भावकूं अनुभव करो।** अर वेदना तीव्र आवतै पूर्वं भये वेदनाके जीतनेवाले उत्तम पुरुषनिका ध्यान करो। अहो आत्मन्! पूर्वं जो साधु पुरुष सिंह व्याघ्रादि दुष्ट जीवनिकी डाढ़निकरि चाबे हुए हू आराधना मे लीन होते भये, तुम्हारे कहा वेदना है?

मुनियों पर उपसर्ग के उदाहरण :—

बहुरि अति कोमल अगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसे **सुकुमाल स्वामीकूं** स्यालनी अपना दोय बच्चानि करि सहित तीन रात्रि तीन दिन पर्यन्त पगनितै भक्षण करने लगी सो उदर बिदारा तदि मरण किया। ऐसा घोर उपसर्गकूं सहकरि परम धैर्य धारण करि उत्तम अर्थं साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि **सुकोशल स्वामीकी** माता का जीव जो व्याघ्री ताकरि भक्षण किया हुआ उत्तमार्थंतै नाही चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि भगवान **गजकुमार स्वामीके** समस्त अगमें दुष्ट वैरी कीले ठोक दिये तो हू उत्तमार्थं साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि **सनत्कुमार नाम महामुनिके** देहमे खाज, ज्वर, काश, शोथ, तीव्र क्षुधाकी वेदना तथा वमन, नेत्रशूल, उदरशूलादिक अनेक रोग उपजे तिनकी घोर वेदनाकूं सौ वर्ष पर्यन्त साम्यभावतै भोगी, धैर्य नाही छाड़्या, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि **श्रेणिकपुत्र** गगानदीमें नावमे डूब गये परन्तु आराधनातै नाही चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि **भद्रबाहुनामा मुनिके** तीव्र क्षुधाका रोग उपज्या तो हू अवमौदर्य नाम तपकी प्रतिज्ञा करि आराधनातै नाही चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है?

बहुरि **ललितघटादि** नामकरि प्रसिद्ध बत्तीस मुनि कौसाबीमे नदीके प्रवाहकरि बहे हुये हू आराधना मरण किया, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि चम्पानगरी के बाह्य गगा तटविषैं **धर्मघोष नाम मुनि** एक महीनाका उपवासकी प्रतिज्ञाकरि तीव्र तृषावेदनातैं प्राण त्यागे, परन्तु आराधनातैं नाही चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है ?

पूर्व जन्मका वैरी देव अपनी विक्रियाकरि शीत की घोर वेदना करि व्याप्त किया हू **श्रीदत्त नाम मुनि** क्लेशरहित हुआ उत्तमार्थकू सिद्ध किया, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि **वृषभसेन नाम मुनि** उष्ण शिलातल अर उष्ण पवन अर उष्ण सूर्यका घोर आताप होते हू आराधनाकूं धारण करी, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि रोहेडनगरमे **अग्नि नाम राजपुत्र** क्रोच नाम वैरीकरि शक्ति नाम आयुधतैं हत्या हू धारण करी, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि काकदी नाम नगरीविषै **अभयघोष नाम मुनिका** समस्त अगकूं चडवेगनाम वैरी छेद्या तो हू घोर वेदनामे उत्तमार्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है ?

विद्युत्चर नाम चोर डास अर मच्छरनिकरि भक्षण किया हुआ हू सक्लेशरहित मरणतैं उत्तमार्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि **चिलातिपुत्र नाम मुनिकूं** पूर्वला वैरी शस्त्रनिकरि घात्या, पाछै घावनिमे स्थूल कीडे पड़े बहुरि अगमे प्रवेशकरि चलनीवत् छिद्र किये तो हू समभावनितैं प्रचुर वेदनासहित उत्तमार्थ साध्या, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि **दण्ड नामा मुनिकूं** यमुनावक्र पूर्वला वैरी बाणनिकरि वेध्या ताकी घोर वेदना होते हू समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त भया तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि कुम्भकारकट नाम नगरमे **अभिनन्दनादि पांचसौ मुनि** घानीनिमे पेले हुए हू साम्यभावतैं नाही चिगे, तुम्हारे कहा वेदना है ?

बहुरि **चाणिक्यनामा मुनिकूं** गायनिके घरमें सुबन्ध नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये परन्तु प्रायोपगमन सन्यासतैं नाही चले, तुम्हारे कहा वेदना है ?

कुलालनाम ग्रामका बहिर्भागविषै **वृषभसेन नाम मुनि** संघसहितकूं रिष्टाभ नाम वैरी अग्नि लगाय दग्ध किये, ते परम वीतरागतातैं आराधनाकू प्राप्त भये, तुम्हारे कहा वेदना है ?

भो आराधनाका आराधक हो ! हृदयमें चितवन करो। एते मुनि असहाय एकाकी इलाज प्रतीकाररहित वैयावृत्यरहित हू परम धैर्य धारणकरि कायरता रहित समभावनितैं घोर उपसर्गसहित आराधना साधी, इहा तुम्हारे कहा उपसर्ग है ? समस्त साधर्मी जन वैयावृत्यमे तत्पर है तो हू तुम कैसै क्लेशित हो रहे हो ? ये सब बड़े बडे पुरुष भये तिनके कोऊ सहाई नाही था, अर कोऊ वैयावृत्य करनेवाला नाही था, असहाय थे, तिन ऊपरि दुष्ट वैरी घोर उपसर्ग किये, अग्निमे दग्ध किये, पर्वततै पटक शस्त्रनितै विदारे, तथा तिर्यंश्चनिकरि विदारे गये, खाये गये, जलमे डुबोये गये, कुवचनके घोर उपद्रव किये तो हू **साम्यभाव नाहीं तज्या** । तुम्हारे उपसर्ग नाही आया। अर धर्म के धारक करुणावान धैर्यके धारक परम-हितोपदेशमे वैयावृत्य मे उद्यमी समस्त परिकर हाजिर है। अब आकुलताका कारण नाही, तथा शीत उष्ण पवन वर्षादिकनिका उपद्रव नाही, ऐसे अवसरमे हू कैसै शिथिल भए हो ?

अर जो तुम्हारे रोग-जनित अशक्तता-जनित क्षुधा तृषादिक वेदना भई है तिसमे परिणाम मत लगावो। **साधर्मी जनके मुखतं उच्चारण किये जिनेन्द्रका वचनरूप अमृतका पान करो**। तातै समस्त वेदनारूप विषका अभाव होय, परिणाम उज्ज्वल होय, परम धर्ममे उत्साह होय, पापकी निर्जरा होय, कायरताका अभाव होय है।

चतुर्गतिके दु:ख:—

अर वेदना आवतै चतुर्गतिनिमे जो दु.ख भोगे तिनकू चितवन करो। इस ससारमे परिभ्रमण करता जीव कौन-कौन वेदना नाही भोगी ? अनेक बार क्षुधा वेदनातै तृषावेदनातै मरा है, अनेकबार अग्निमे दग्ध होय मरे, जलमे डूबि अनेक बार मरे, विषभक्षणतै मरे,

अनेक बार सिंह सर्प श्वानादिकनिकरि मारे गए हो, शिखरतै पड़ि-पड़ि मरे हो। शस्त्रनिके घाततै मरे हो, अब कहा दुःख है ? अर जो दुःख नरक तिर्यञ्चगतिमे दीर्घकाल भोग्या है तिनकू ज्ञानी भगवान जाने है। इहा अब किंचित् वेदना अति अल्पकाल आई तातै धैर्य मत छाड़ो। जो घोर वेदना कर्मनिके वश होय चारो गतिनिमे भोगी है तिनकूं कोटि जिह्वानिकरि असंख्यातकालपर्यन्त कहनेकू समर्थ नाही।

नरकगति के दुःख :—

नरक मे जो दु खकी सामग्री है तिनकी जात इस लोकमे है नाही, कैसै दिखाई जाय ? भगवान केवलज्ञानो ही जानै हैं। जहा पचम नरकताईंका उष्ण बिलनिमे उष्णता तो ऐसी है जो सुमेरुपरिमाण लोहेका गोला छोड़िये तो भूमि ऊपरि पहुचता-पहुचता पानी होय वहि जाय, इहा तुम्हारे रोगजनित कहा उष्णता है ? अर पचम नरकका तीसरा भाग अर छठी सप्तमी पृथ्वीका विलनिमे ऐसा शीत है जो सुमेरुप्रमाण गोलाका शीततै खण्ड-खण्ड हो जाय। ऐसी वेदना यो जीव चिरकालपर्यन्त भोगी है।

यहा मनुष्यजन्ममे ज्वरादिक रोगजनित तथा तृषातै उपजी तथा ग्रीष्मकालतै उपजी उष्णवेदना तथा शीतज्वरादिकतै उपजी वा शीतकालतै उपजी शीतवेदना केती है ? अल्पकाल रहैगी। सो धर्मके धारक ममत्वके त्यागी तिनकूं समभावनितै नाही भोगनी कहा ? यो अवसर समभावनितै परीषह सहनेको है। अर क्लेशभाव करोगे तो कर्मका उदय छोडनेका नाही, कहा हू भागोगे, अर आपघातादिकतै मरोगे तो नरकनिमे अनन्तगुणी असख्यातकाल वेदना भोगोगे। अर पापके उदयतै नारकीनिकै स्वभावहीतै शरीरमे कोट्टयां रोग सासता है।

नरककी भूमिका स्पर्श ही कोटि बिच्छूनिका डकतै अधिक वेदना करनेवाला है। नारकीनिके क्षुधा वेदना ऐसी है जो समस्त पृथ्वीके अन्नादिक भक्षण किए उपशम होय नाही, अर एक कणमात्र मिलै नाही। अर तृषावेदना ऐसी है जो समस्त समुद्रका जलपिये हू बुझै नाही, अर एकबून्दमिलै नाही। अर नरकधराकी पहली पटलकी महा-

दुर्गन्ध मृत्तिका ऐसी है जो एककरण इस मनुष्यलोकमें आ जाय तो आध-आधकोश पर्यन्तके पचेन्द्री मनुष्य तिर्यञ्च दुर्गन्धतें मरणकरि जांय। दूजा पटलकीतें एक कोशका, ऐसें पटल-पटल प्रति आध-आधकोश बधता सप्तम पृथ्वीका गुणचासमां पटलकी मृत्तिकामे ऐसी दुर्गन्ध है जो एक करण यहां आ जाय सो साढा चौबीस कोशताई का पचेन्द्री मनुष्य तिर्यञ्च दुर्गन्धकरि प्राणरहित हो जाय। अर ऐसा ही स्वरूप शब्दके अनुभवनिका दु.ख **वचनके अगोचर केवली ही जानै हैं।**

ऐसे दु:खनिकूं बहु आरम्भ बहुपरिग्रहके प्रभावतें, सप्तव्यसन सेवनतें, अभक्ष्यनिके भक्षणतें, हिंसादिक पचपापनिमे तीव्र रागतें, निर्माल्य भक्षणतें, घोर दु.खनिका पात्र नारकी होय है। नारकीनिका मानसिक दु:ख अपार है। नारकीनिकै शारीरिक दु.ख, क्षेत्रजनित दु.ख, परस्पर कीये-दु:ख, असुरनिकरि उपजाये दु.ख, वचनके कहनेके गोचर नाही हैं, सो चिंतवन करो। अर नरकमे आयु पूर्ण भये बिना मरण नाही।

तिर्यञ्चगति के दु:ख :—

अर तिर्यञ्चनिके अर रोगी दरिद्री मनुष्यनिके पापका उदयतैं जे तीव्र दु:ख होय है सो प्रत्यक्ष देखो ही हो, वर्णन कहा करिये ? पराधीन तिर्यञ्चगतिके दु.ख वचनरहितपना अर तिनके क्षुधाका तृपाका शीतका उष्णताका ताड़नाका अतिभार लादनेका नासिकाछेदन रज्जूनिकरि बाधनेका घोर दु.ख है, अर स्वाधीन खान पान चालना बैठना उठना जिनके नाही। अर कोऊकूं सुख-दु.खस्वरूप अभिप्राय जनाय कुछ उपाय उद्यम करना सो नाही। इसके घर रहूँ, इसके नाही रहूँ, सो अपने आधीन नाही, चाडाल म्लेच्छ निर्दयीनिके आधीन हू रहना अर ब्राह्मणादिकनिके आधीन होना। कोऊ नाना मारनिकरि मारै, कोऊ आहार नाही देवै, अर अल्प देवै, अर भार वधता वहावै तो कोऊ राजादिकनिकै निकट जाय पुकार करनेका सामर्थ्य नाही, कोऊ दयाकरि रक्षा कर सकै नाही। नासिका गलि जाय, स्कन्ध गलि जाय, पीठ कट जाय, हजारां कीड़ा पड जाय तो हू पाषाणादिकनिका कर्कश भार लादना, अर भार नाही वह्या जाय, चाल्या नाही

जाय, तदि मर्मस्थाननिमे चामडीनिका तथा लोहमय तीक्षण आरनिका तथा लाठी लट्ठनिका घात अर दुर्वचननि करि जवरीतै चलावना, नासिकादि मर्मस्थाननिमे ऐसा जेवडा साकल चाममय नाडीनिकरि बाधै जो हलन चलन नाही कर सकै, ऐसे तिर्यंश्चनिके प्रत्यक्ष दु ख देखो हो, तुम्हारे कहा दु ख है ?

जलचर नभचर वनचर जीव परस्पर भक्षण करै हैं। छिपे हुए-निकू हेरि हेरि निर्बलकू सबल भक्षण करे है। शिकारी भील धीवर बागुला देखत प्रमाण जहा जाय तहातै पकडि लावै है, मारै है, विदारै है, राधै है, भुलसै है, कौन दया करै ? पूर्वजन्ममे दयाधर्म धारचा नाही, धनका लोभी होय अनेक भूठ कटप छल किया ताका फल तिर्यंश्चगति मे उदय आवै है, सो अब चिंतवन करो।

मनुष्यगति के दु ख :—

अर मनुष्यनि मे इष्टका घोर दु ख है अर दुष्टनिका सयोगका अर निर्धन होनेका, पराधीन बन्दीगृहमे पडनेका, अपमान होनेका, मारन ताडन त्रासन भोगनेका, अर आधा वहिरा गू गा लूला पागला होनेका, क्षुधा तृषा भोगने का, शीत उष्ण आतापादि भोगनेका, नीचकुल नीच क्षेत्रादिकमे उपजनेका, अग उपाग गल जानेका, सड़ जानेका, वाछित आहार नाही मिलनेका घोर दु:ख भोगे तिनकू चिंतवन करो। यहा तुम्हारे कहा दु.ख है ?

वहुरि नरक तिर्यंश्चगतिके दु'ख तो अपार है। परन्तु पापके उदयतै मनुष्यगति मे भी मानसिक दु ख हू अज्ञान भावतै कषाय अभिमानके वश पड़्या जीवके अपार है। **कर्म बलवान है।** जिनका वचन हू मस्तकमे तीक्ष्णशूल समान वेदना करै ऐसे महादुष्ट निर्दयी महावक्र अन्यायमार्गी तिनके शामिल कर्म उपजाय दे तिनकी रात दिन त्रास भोगना भयवान रहना, अर जे उपकारी इष्ट प्राणनि समान जिनके सगमकरि अपना जीवन सफल मानै था, ऐसे स्त्री पुत्र मित्र स्वामी सेवकादिकनिका वियोग होनेका, बाल्य अवस्था मे पुत्री का विधवा होनेका तथा आजीविका भ्रष्ट होनेका, धन लुटि जानेका, अति निर्धन होनेका, उदर भर भोजन नाही मिलनेका, दुष्ट स्त्री कपूत पुत्र पावनेका, बाँधवनिमे तिरस्कार होनेका, गुणज्ञ स्वामीके

वियोग होनेका तथा अपना अपवाद होने कलङ्क चढाने का बडा दु:ख भोगे है। यातें हे धीर! यहा सन्यासके अवसरमे किंचित्मात्र उपजी कहा वेदना है?

कर्मके उदयतैं मनुष्यजन्ममे अग्निमे दग्ध हो जाय है, सिह व्याघ्र सर्प दुष्ट गजादिककरि भक्षण करिये है, हस्त पाद कर्ण नासिका छेदे है, शूली चढ़ावै है, नेत्र उपाडै है, जिह्वा उपाड़ै है, पापकर्मका उदयतैं मनुष्यजन्महूमे घोर दु.ख भोगै है तथा दुष्ट वैरीनिके प्रयोगतैं दडनिकरि बेतनकरि मुसडीनिकरि मुदगरनिकरि चामठनिकरि, लोहडीनिकरि मारे गये हो शस्त्रनितैं विदारे गये। लात घमूका ठोकरनिकी मार, पाद-ताडनिकी मार तथा दलना बालना सब पराधीन होय भोगे है। जो स्वाधीन होय कर्मके उदयजनित शत्र को साम्यभावनितैं एकवार भोगै तो दु:खनिका पात्र नाही होय। समस्त रोग अनेकबार भोगे है। अब तुम्हारे ये रोग शीघ्र निर्जरैगा। अर रोग बिना ऐसा जीर्ण दुष्ट क्लेवरतैं छूटना नाही होय, देहतैं ममता नाही घटे, धर्ममे प्रीति नाही बधै, तातैं रोगजनित वेदनाकू हू उपकार करनेवाली जानि हर्ष ही करो।

हे धीर! जो दु ख तुम ससारमे भोगे हैं तिनके अनन्तवे भाग हू तुम्हारे दु ख नाही है। अव इस अवसरमे कायर होय धर्मकू मलीन कैसै करो हो? जो तुम कर्मके वश होय चतुर्गतिमे घोर वेदना भोगी तो इहा धर्मरूप तप व्रत सयम धारण करते वेदना भोगनेका कहा भय करो हो? कर्मके वश होय जो वेदना अनन्तवार भोगी सो वेदना धर्मकी रक्षाके अर्थि जो एक बार समभावनितैं सही तो बड़ी निर्जरा हो जाय।

भो धीर! तुम भय-रहित होहू वा भय सहित होहू, इलाज करो वा मत करो, प्रबल उदय आया कर्म तो नाही रुकैगा। **इलाज हू कर्मका मद उदय भये कार्य करै है।** पाप का प्रलय उदय होतें अति शक्तिमान हू औषधि, बहुत यत्नतैं प्रयुक्त किया हुआ हू वेदनाका नाश नाही करि सकै है। जे असयती योग्य अयोग्य समस्त भक्षण करनेवाला त्यागव्रतरहित रात्रि दिन समस्त प्रतीकार करै तो हू कर्म के प्रवल उदयतैं रोगकरि रहित नाही होय, तो तुम सयम व्रत सहित

अयोग्यका त्यागी कैसैं आकुल भये प्रतीकार वांछो हो ? इहा राजा समान सामग्री अन्य कौनकै होय ? अर जिनकै भक्ष्य-अभक्ष्य, योग्य अयोग्यका विचार नाही, हिंसाके कारण महान आरम्भ करनेका जिनके भय नाही, दया नाही, अर बड़े-बड़े धन्वतरि सारिखे अनेकूं वैद्य अर अनेक ही औषधि होय तो हू कर्मका उदयजनित वेदनाकू उपशम नाही करै । तदि त्यागी व्रती तुम अर दयावान व्रती वैयावृत्य करनेवाले कैसे तुम्हारा रोग हरैंगे ?

समस्त वेदनाका उपशम करनेवाला जिनेन्द्रका वचनरूप औषधि ग्रहणकरि परम साम्यभावरूप अभेद्य चक्रकू धारण करो, पूर्वकर्मका उदयरूप रसकू समभावनितै भोगो, ज्यूं अशुभ की निर्जरा हो जाय अर नवीन कर्मका बन्ध नाही होय । **मरण तो एक पर्यायमे एकबार होना ही है; परन्तु संयमसहित मरणका अवसर तो इहां प्राप्त भया है तातै बड़ा हर्ष सहित मरण करो,** जातै अनेक जन्म धारि अनेक मरण नाही करो । अर अति अल्प जीवनमे धर्म छाडि आर्तपरिणामी मति होहू, **अशुभकर्मके उदयके रोकनेकूं इंद्रादिकसहित समस्त देव समर्थ नाहीं,** ताहि ये अल्पशक्तिधारी कैसै रोकेंगे ? जिस वृक्षके भग करनेकूं गजेद्र समर्थ नाही, तिस वृक्षकू दीन निर्बल सूसा कैसै भग करै ? जिस नदीके प्रबल प्रवाहमे महान देहका धारक अर महा बलवान हस्ती बहता चल्या जाय तिस प्रवाहमे सूसाका बहने का कहा आश्चर्य ? जा कर्म का उदयकूं तीर्थङ्कर चक्रवर्ती नारायण बलभद्र अर समस्त देवनिसहित इन्द्रहूरोकनेकूं समर्थ नाही तिस कर्मकूं अन्य कोऊ रोकनेकूं समर्थ है कहा ?

तातै कर्मके उदयकू अरोक जानि असाता का उदयमे क्लेशरूप मत होहू, शूरपना ग्रहण करो, अर साम्यभावतै कर्मकी निर्जरा करो । अर कर्मके उदयतै दु खित होहुगे, दीनता करोगे तो वेदना नाही घटैगी, वेदना ही वधैगी । वेदना बधैगी, धर्म और व्रतसंयम यश नष्ट होय आर्तध्यानतै घोर दु.खके भोगनेवाले तिर्यञ्च जाय उपजोगे । यामे सशय नाही । **जो असाताका उदयमे सुखके अर्थि रोवना है, विलाप करना है दीनता भाषण करना है सो तेलके अर्थि वालू रेतका पेलना है, तथा घृतके निमित्त जलकूं विलोवना है, तथा तन्दुलके**

निमित्त परलाकूं खोदना है सो केवल खेदके निमित्त हैं, आगानै तीव्र बन्धनके निमित्त हैं।

बहुरि जैसे कोऊ पुरुष अज्ञानभावतै पूर्व अवस्थामे किसी सौ धन करज लेय भोग्या, अब करार पूर्णभये आय मागै तदि न्यायमार्गी तो हर्ष मानि ऋण चुकाय करि अपना भार ज्यो उतारि सुखी होय, तैसे धर्म के धारक पुरुष तो कर्मके उदयतै आया रोग दरिद्र उपसर्ग परीषह तिनके भोगनेतै ऋण दूर होनेकी ज्यो मानि सुखी होय है। जो अबार हमारे पूर्वकृत कर्म उदय आया है भला अवसर मे आया। अवार हमारे ज्ञानरूप प्रचुर धन है, भगवान पचपमेष्ठीका शरण है, साधर्मीनिका बडा सहाय है जो सहज ऋणका भार उतारि निराकुल सुखने प्राप्त होस्यूं। अपना कषायादि भावनितै उपजाया कर्म ऐसा बलवान है जो ऋद्धिका, विद्याका, बंधुजनका, धनसम्पदाका शरीरका, मित्रनिका, देवदानवनिका सहायका बलकू आधी क्षणमे नष्ट करै है, कर्मरूप ऋण छूटै नाही।

बहुरि रोग, शोक, जीवन, मरण अन्य किसीहीके नाही उदय आया होय अर तुम्हारे ही उदय आया होय तो दुःख करना उचित है। क्षुधा, तृषा, रोग, वियोग, जन्म, जरा, मरण कौनके उदके अवसरमे त्रास नाही देवै है? **समस्त संसारी जीवनिके उदय आवै है, मरण समस्तकूं प्राप्त होय है, चारू गतिनिमें कर्मका उदय आवै है।** तातै जो पूर्व अवस्थामे बन्ध किया ताका उदयमे आकुलता त्यागि परम धैर्य धारणकरि समभावनितै कर्मका विजय करो समस्त दु.खनिका विजय कारनेका अवसरमे अब काहेका विषाद करो हो? **सम्यग्दृष्टि तो आजन्मतै समाधिरणकी ही बांछा करै है।** सो यो अवसर महा कठिन प्राप्त भयो है, समस्त दुःखनिका नाश का अवसर कठिनतातै पाया है। **उत्साहका अवसरमें विषाद करना उचित नाहीं। यो अवसर चूक्या फिर अनन्तकालमें नाहीं मिलेगा।**

बहुरि अरहत सिद्ध आचार्यादिक भगवान परमेष्ठी अर समस्त साधर्मीनिकी साखतै जो त्याग सयम ग्रहण किया तिस त्यागका भग करनेतै पचपरमेष्ठीनितै पराङ्मुखता भई, समस्त धर्मको लोप भयो, धर्मके दूषण लगायो। धर्मका मार्ग की विराधना करी, अपना दोऊ

लोक नष्ट किया। अर मरण तो अवश्य होयहीगा, मरणअर दुःख तो व्रत संयम भंग किये हू नाहीं दूर होयगा। जो कार्य राजाकू अर पचोकू साक्षी करि करै अर फेर वाकू लोपै तो तीव्र दडनै महा अपराधनै प्राप्त होय अर समस्तलोक मे धिक्कार अर तिरस्कारकू प्राप्त होय है। अर परलोकमे अनन्तकाल पर्यन्त अनन्त जन्म मरण रोग शोक वियोग होनेका पात्र होय है। जो त्याग नाही करै सो तो अनादिका ससारी है ही, वाने तो त्याग सयम व्रत पाया ही नाही। अर जो त्यागकरि व्रत संयम संन्यास बिगाड़ै है ताके धर्मवासना अनन्तानन्त काल में दुर्लभ है। व्रत भग करना महा अपराध है।

बहुरि आहारकी गृद्धिता है सो तो अति निंद्य है। जे उत्तम पुरुष है ते तो क्षुधा वेदनाकू प्राणापहारिणी जानि क्षुधाका इलाज मात्र आहार करै हैं। सो हू बडी लज्जा है आहारकी कथा हू दुर्ध्यानकू करनेवाली जानि त्याग करै हैं। यो हाड़ मांसमय देह आहार विना रहै नाही। अर देह विना तप व्रत सयमरूप रत्नत्रयधर्म पलै नाही, तातै रत्नत्रयका पालनकै अर्थि रस नीरस जैसा कर्म विधि मिलावै तैसा निर्दोष उज्ज्वल भोजनतै उदर पूर्ण करै है, रसना इन्द्रियकी लपटतानै कदाचित् प्राप्त नाही होय है।

मनुष्यजन्मकी सफलता तो आहारका लपटताकै जीतनेतै ही है। तिर्यञ्चगतिमें तो आहारकी लपटतातै बलवान होय सो निर्बलनै तथा परस्पर भक्षण करै है, आहारकी गृद्धितातै माता पुत्रकू भक्षण करै है। मनुष्य गतिमें हू नीच उच्च जातिका भेद, समस्त आचारका भेद भोजनके निमित्ततै ही है। इसलोकमें जेता निंद्य आचरण हैं तितना भोजन का विचाररहितकै ही है। अर भोजनमे जिनके लपटीपना नाही ते उज्ज्वल है, बाछारहित है, ते उत्तम है। अर नीच उच्चजाति कुलका भेद भी भोजनके निमिततै ही है।

आहार का लंपटी घोर आरम्भ करै है, बाग बगीचेनिमे एक अपने जीमनेके, अर्थि कोट्या त्रस जीवनिकू मारे है, महापापकी अनुमोदना करै है, अभक्ष्य भक्षण करै है। असत्य वचन हिंसादिक महापापके वचन आहारका लपटी बोलै है। आहारका लपटी सुन्दर भोजन वास्तै चोरी करै है। कुशील सेवन करै है।

भोजनका लंपटी धन परिग्रह मे महामूर्च्छावान होय है। अन्य लोकनिकूं मारि झूंठ बोलै, चोरी करकै हू मिष्ठ भोजन वास्तै धन सग्रह करै है। मिष्ठ भोजन वास्तै क्रोध करै है, मान करै है, कपट छल करै है, चोरी करै है, कुलका क्रम नष्ट करै है, नीच जाति के शामिल हो जाय है, नीच कुलके मद्य मासके भक्षकनिका दासपना अगीकार करै है भोजनका लपटी निर्लज्ज होय जाय है। भोजनका लपटी अपना पदस्थ, उच्चता जाति कुल आचार नाही देखै है, स्वादिष्ट भोजन देखि मन बिगाड़ दे है। बहुत धनका धनी अर अपने गृहमे सुन्दर भोजन नित्य मिलता हू नीचनिकै, रकनिकै, शूद्रनिकै, म्लेच्छ मुसलमानकै घर हू जाय भोजन करै है।

भोजनका लोलुपी ग्राम नगरमे विकता, नीच वृत्तकरि-कीया अर समस्त मुसलमानादिक जिनकू स्पर्श कर जाँय, बेच जाय, ऐसे अधम भोजनकू खरीद ल्यावै है।

भोजनका लपटी तपश्चरण, ज्ञानाभ्यास, श्रद्धान, आचरण, समस्त शील, संयमकू दूरतै ही छाडै है। अपना अपमान होना नाही देखै है, अभक्ष्यमे उच्छिष्टमे मासादिकनिमे आसक्त हो जाय है। अयोग्य आचरणकरि अपने कुलका क्रमकू नष्ट करै है, मलीन करै। जिह्वा इन्द्रियकी लपटता कहा-कहा अनर्थनाही करै? शोधना देखना तो आहारके लपटीकै है ही नाही। अर ये आहार कैसा है? कहातै आया है? ऐसा विचार आहारका लपटीकै नाही रहे है।

जो आहारका लपटी है ताकी तीक्ष्णबुद्धि हू मन्द होजाय है, बुद्धि विपरीत होजाय, सुमार्ग छाड़ि कुमार्गमे प्रवीण हो जाय है, धर्मतै पराङ्मुख हो जाय है। **सो देखिये हैं :—केई पुरुष अनेक शास्त्र पढ़्या है, वचनादिकरि अनेक जीवनिकू शुभमार्गका उपदेश करै है, तथा बहुतकालतै सिद्धान्त श्रवण करै है तो तिनकै सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण नाहीं होय है, विपरीत मार्गतै नाहीं छूटै है, तो समस्त अन्याय अभक्ष्य भोजन करनेका फल है।** मुनीश्वरनिकै तो प्रधान आहारकी शुद्धता ही है, अर श्रावककै हू समस्त बुद्धिकी शुद्धताका कारण एक भोजनकी शुद्धता ही जानो। आहारका लपटीकै

योग्यका, अयोग्यका, शोधनेका, नेत्रनितैं देखनेका थिरपना नाही होय। धैर्यरहित शीघ्रतातैं भक्षण ही करै है।

जिह्वा का लंपटी मान सन्मान सत्कार अपना उच्च पदस्थता नाही देखता मिष्ठ भोजन मिलै तहा परम निधीनिका लाभ गिनै है। भोजनका लपटी मिष्ठ भोजन देनेवाले के अधीन होय, माताका पिताका स्वामीका गुरुका उपकार लोपि अपकार ग्रहण करै है। भोजनके लपटीका विनय अपना स्त्री पुत्र हू नाही करै है। भोजनका लपटीकै धर्मका श्रद्धान भी नाही होय है। **जातैं सम्यग्दृष्टि आत्मीक सुखकूं सुख जानै ताकै तो इन्द्रियनिका विषयजनित सुखमें अत्यन्त अरुचि होय है।**

जाकूं सुन्दर भोजन ही सुख दीख्या सो तो विपरीत ज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। जिह्वाका लपटी है सो महाअभिमानी हू उच्च-कुली हू नीचनिका चाटुकार स्तवन करै है। तथा भोजनका लंपटी दीन हुआ परका मुख देखता फिरै है, याचना करै है, नाहीं करने-योग्य कर्म करै है। एक भोजनकी चाहतैं शालिमच्छ सप्तम नरक जाय है, अर अनेक जन्तु भक्षणकरि महामच्छ हू सप्तम नरक जाय है। देखहू सुभौम नाम चक्रवर्ती देवोपुनीत भी दशांग भोगनितैं तृप्त नाही भया अर कोऊ विदेशीका लाया फलके रसकी गृद्धताकरि कुटुम्बसहित समुद्रमे डूबि सप्तम नरक गया, औरनिकी कहा कथा?

अर ऐसा जिनेन्द्रका वचनरूप अमृतपान करनेतैं हू जो तुम्हारै आहारमें रसवान भोजनमें गृद्धता नाहीं नष्ट भई तो जानिये हैं तुम्हारै अनन्तकाल असंख्यातकाल ससार में परिभ्रमण करना अर क्षुधा तृषा रोग वियोग जन्म मरण अनन्त बार भोगना है।

अर जो तुम या विचारो हो:—जो मैं भोजन-पान कर तृषाकूं मेटि तृप्त होऊंगा सो काचित् आहारकरि तृप्तता नाही होयगी। क्षुधा तृषाकी वेदना तो असाता नाम कर्मके नाशतैं मिटैगी, आहार करनेतैं नाही घटैगी। आहारतैं तो अधिक गृद्धता बधैगी। जैसैं अग्नि ईन्धन करि तृप्त नाही होय, अर समुद्र नदीनिकरि तृप्त नाही होय तैसैं आहारतैं तृप्ततानाही होयगी, लालसा अधिक-अधिक बधैगी। लाभातरायके अत्यन्त क्षयोपशमतैं उपज्या अत्यन्त बल वीर्य तेज

कांतिके करनेवाला मानसिक आहार असंख्यातकालपर्यंन्त स्वर्गमें इन्द्र अहमिन्द्रका सुख भोग्या तो हू क्षुधा वेदनाकी अभावरूप तृप्तता नाही भई। तथा चक्रवर्ती नारायण बलभद्रप्रतिनारायण भोगभूमिके मनुष्यादि लाभातराय भोगान्तरायका अत्यन्त क्षयोपशमतै प्राप्त भया दिव्य आहार ताकूं बहुत काल भोगि करिकै हू क्षुधा वेदना नाही दूर करी तो तुम्हारे किंचित् मात्र अन्नादिक भक्षण करि कैसं तृप्तता होयगी ?

तातै धैर्य धारण करि आहारकी वांछाके जीतनेमे यत्न करो। अर आहार केताक भक्षण करोगे, अर याका स्वाद केतेक काल है ? जिह्वाका स्पर्श मात्र स्वाद है। निगल गया पाछै स्वाद नाही, पहले स्वाद नाहीं, केवल अधिक तृष्णा बधावै है। समस्त प्रकारके आहार भक्षण तुमने अनादितै किये हैं तदि तृप्ति नाही भई तो अब अन्तकाल मे कठगत प्राणके समय किंचित् आहारतै कैसे होयगी ? तातै दृढता धारणकरि अपना आत्महितकू करो।

अर ऐसा कोऊ आहार भी लोकमें अपूर्व नाहीं है जाकूं तुम नाहीं भोग्या। जो समस्त समुद्रका जल पीये तृप्त नाही भया तो ओसकी बूंदको चाटनेकरि कैसे तृप्त होहुगे ? अर पूर्वकालमे हू रात्रि-दिन आहारकै निमित्त ही दुःखित हुआ पर्याय व्यतीत करी है। देखो बहुत काल तो आहारका स्वादकी वाछा रहै सो दु.ख, अर आहारकी विधि मिलावनेकू सेवा वणिज इत्यादिककरि धन उपार्जन करने मे दुःख, दीनता करता पराधीन रहा हू दु.ख, धन खरच होता दीखै तामे दुःख स्त्रीपुत्रादिक आहारका विधि मिलावै तिनकै आधीन होने का दु ख। तथा आप बहुत काल पर्यन्त बनाना आरम्भ करना अर भोजन तैय्यार नाही होय तेतै वांछासहित रहना सो हू दु ख, कोऊ रसादिक सामग्री नाही लावै तो लावनेका दुःख, अपनी इच्छाप्रमाण नाही मिलै तो दुःख, अर मिष्ठभोजन भक्षण करते खाटा की लालसा, फिर चिरपराकी लालसा, फिर मीठाकी लालसा, इत्यादिक बारम्बार अनेक लालसा जहां नाही घटै तहां सुख कहा ?

अर जिह्वाके स्पर्शमात्र हुआ अर निगलै है, श्रेष्ट मनवांछित हू आहार एक क्षणमें जिह्वाका मूलकू उलघन करै है, एक जिह्वाका अग्रही स्वाद जानै है, जिह्वा नाही भिड़ै तितनैकाल स्वाद नाही, अर

जिह्वातैं पार उतरचा कि जिह्वाके स्वाद नाही। एक निमेषमात्र आहारका स्पर्श का स्वाद है तिसके निमित्त घोर दुर्ध्यान करै है, महा-सकट भोगै है, अर भोजन करिकै हू वाछारहित नाही होय है।

तातै ऐसा दु खका करनेवाला आहारके त्यागका अवसर आया, इस अवसरकू महादुर्लभ अक्षय निधानका लाभ समान जानो। आहार के स्वादमे अति विरक्त होहू। यहा जो दृढ परिणामनितै आहारमे विरक्त होहूगे तो स्वर्ग लोकमे जाय उपजोगे, जहा हजारा वर्षताई क्षुधावेदना नाही उपजैगी। जहा जितना सागरप्रमाण आयु तितना हजार वर्ष-पर्यन्त तो भोजनकी इच्छा ही नाही उपजै। अर पांछै किंचित् इच्छा उपजै तदि कठनि मे अमृत परमाणु ऐसै द्रवै सो एक क्षणमात्रमे इच्छा को अभाव होजाय। सो समस्त प्रभाव असख्यात वर्ष-पयन्त क्षुधावेदना नष्ट होनेरुप पूर्वजन्ममे आहारकी लालसा छाड़ि अनशनतप अवमौदर्यतप रसपरित्यागतपके करनेका है। ये तिर्यञ्च मनुष्यगतिमे जो क्षुधा तृपा रोगादिक दु ख अनन्त कालतै भोगे है सो समस्त आहारकी लपटताका प्रभाव है। जिन-जिन आहारकी लपटता छाडी ते क्षुधादिवेदना-रहित कवलाहार रहित दिव्य देव होय है। जो अब इस वेदनातै दु खित हो तो आहार के त्याग मे ही अचल प्रवतो, जो अल्पकालमे वेदना रहित कल्पवासी देवनिमे जाय उपजो। अर आहार भक्षण करिकै तो वेदनारहित नाही होवोगे।

बहुरि समस्त दुःखनिका मूल कारण इस जीवके एक शरीरका ममत्व है। याकी ममतातै याकी रक्षाके निमित्ततै ही अनन्तानन्त कालपर्यन्त दु ख भोगे है। जेते क्षुधा तृपा, रोगादिक परीषहनिका दुःख है ते समस्त एक देहकी ममतातै हैं। जे महन्त पुरुष देहमे ममताका त्यागी भये है तिनके हाड-मास चाममय महा दुर्गन्ध रोगनि का भरा देह धारण नाहीं होय। जेतै ससारका अभाव नाही होय तितने इन्द्रादिका देवनिका दिव्य देह प्राप्त होय है, पाछै शील-सयमादि सामग्री पाय निर्वाणकू प्राप्त होय हैं। जो देहकी वेदनातै दु खी हो तो शीघ्र ही देह की ममता लालसा छांडो जो देह नाही धारो। अर आहारकी चाहतै दु खी हो तो आहारहीका त्याग करो

जो फेरि क्षुधा तृषादिक वेदनातैं आहार ग्रहण नाही करो। क्रमतैं देहकू ऐसैं कृश करो जैसे वात पित्त कफका विकार मन्द होता जाय, परिणामनिकी विशुद्धता बधती जाय। ऐसैं आहारका त्यागका क्रम पूर्वँ कह्या ही है। पाछैं अन्तकालमे जेती शक्ति होय तिस प्रमाण जलकाहू त्याग करना। अन्तकालमे जेती शक्ति रहै तेतैं पच नमस्कारमन्त्रका तथा द्वादश भावनाका स्मरण करना। जब शक्ति घट जेती जाय तो **अरहंत नामकाही, सिद्धका ध्यान मात्र करना।**

अर जब शक्ति नाही रहै तदि धर्मात्मा, वात्सल्य अगका धारक, स्थितिकरणमे सावधान ऐसे साधर्मी निरन्तर चार आराधना पंचनमस्कार मधुर स्वरनितैं बडी धीरतातैं श्रवण करावै जैसैं आराधकका निर्बल शरीरमें मस्तकमे वचनकरि खेद दुःख नाही उपजै, अर श्रवण करनेमे चित्त लगि जाय तैसैं श्रवण करावै। बहुत आदमी मिलि कोलाहल नाही करै, एक-एक साधर्मी अनुक्रमतैं धर्मश्रवण जिनेन्द्र-नाम स्मरण करावै। अर आराधक के निकट बहुत जनाका वा ससारिक ममत्व मोहकी कथा करनेवालेनिका आगमन रोक देवै, पच नमस्कार या च्यार शरण इत्यादिक वीतराग-कथा सिवाय नजीक नाही करैं, दोय चार धर्मके धारक सिवाय अन्यका समागम नाही रहै।

अर आराधक हू सल्लेखना का पाच अतीचार दूर ही तैं त्यागै, तिन पच अतीचारनिके कहनेकू सूत्र कहै हैः—

सल्लेखना के अतीचार

> **जीवितमरणाशसे भयमित्रस्मृतिनिदानामानः।**
> **सल्लेखनातिचाराः पंच जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥**

अर्थ :—(१) **जीवितशंसा**—सल्लेखना करकै जो जीवनेकी बांछा करै जो दोय दिन जीऊ तो ठीक है, सो जीविताशसा नाम अतीचार है।

(२) **मरणाशंसा**—अर मरणकी बाछा करै जो अब मरण हो जाय तो ठीक है सो मरणाशसा नाम अतीचार है।

(३) **भय**—अर भय करना जो देखिये मरणमे कैसा दु.ख

होयगा, कैसे सहूंगा, सो भय नाम अतीचार है।

(४) मित्र स्मृति—अर अपने स्वजन पुत्र-पुत्री मित्रादिककी बांछा करना, सो मित्रस्मृति नाम अतीचार है।

(५) निदान—आगामी पर्यायमे विषयभोग स्वर्गादिककी वाछा करना, सो निदान नाम अतीचार है। ऐसैं पच अतीचार सल्लेखना के जिनेन्द्र ने कहे हैं।

भावार्थ :—सल्लेखनामरणमे समस्त त्यागकरि केवल अपना शुद्ध ज्ञायकभावका अवलम्बन करि समस्त देहादिकतै ममत्व छाड़ि सन्यास धारा, फेरहू जीवनेकी, मरनेकी बाछा करना, भय करना, मित्रनिमे अनुराग करना, आगै सुखकी वाछा करना सो परिणामनिकी उज्ज्वलता नष्ट करि राग द्वेष मोह बधावने वाले परिणाम है, तातैं सल्लेखनाकू मलीन करनेवाले अतीचार कहे।

निर्विघ्न आराधनाका धारणतै गृहस्थके स्वर्गलोक महर्द्धिक होना तो वर्णन किया। पाछै सयम धरि नि.श्रेयस कहिये निर्वाणकू प्राप्त होय है। तिस निःश्रेयसका स्वरूप कहनेकू सूत्र कहै है :—

निःश्रेयस का स्वरूप :—

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधम् ।
नि.पिबति पीतधर्मा सर्वंदु खैरनालीढः ॥

अर्थ :—ऐसैं सम्यग्दृष्टि अन्तसल्लेखनासहित बारह व्रतकू धारण करै है सो जिनेन्द्रका धर्मरूप अमृत पानकरि तृप्त हुआ तिष्ठै है। यातैं जो पीतधर्मा कहिये आचरण किया है धर्म जानैं, ऐसा धर्मात्मा श्रावक है सो अभ्युदय जो स्वर्गका महार्द्धिकपना असख्यात कालपर्यन्त भोगि फिर मनुष्यनिमे उत्तम राज्यादिक विभव पाय, फिर ससार देह भोगनितैं विरक्त होय, शुद्ध सयम अङ्गीकार करि नि.श्रेयस जो निर्वाण है ताहि निःपिवति नाम आस्वादन करै है, अनुभव करै है। कैसाक है निःश्रेयस ? निस्तीर कहिये तीर जो पर्यन्ततािकरि रहित है, वहुरि दुस्तर है, जाका पार नाही है, वहुरि सुखका समुद्र है, ऐसा निर्वाण मे समस्त दु खनिकरि अस्पृष्ट हुआ सता भोगे है।

अब और हू नि.श्रेयसका स्वरूप कहिये है :—

निःश्रेयस ही इष्ट है :—

जन्मजरामयमरणैः शोककैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥

अर्थ :—जो जन्म जरा रोग मरणकरि रहित अर शोक दुःख भयकरि रहित अर नित्य अविनाशी समस्त परके सयोगरहित केवल शुद्ध सुखस्वरूप जो निर्वाण है ताहि निःश्रेयस इष्ट कहिये है ।

बहुरि नि श्रेयसका स्वरूपकू कहैं है —

निःश्रेयस में अनन्त काल तक रहते हैं

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रल्हादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥

अर्थ :—विद्या कहिये केवलज्ञान अर अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य, अर स्वास्थ्य कहिये परम वीतरागता, अर प्रल्हाद कहिये अनन्तसुख, अर तृप्ति जो विषयनिकी निर्वाञ्छकता, शुद्धि जो द्रव्यकर्मभावकर्मरहितता इनकरि आत्मसम्बन्धकू प्राप्त भये, अरनिरतिशया कहिये ज्ञानादिक पूर्वोक्त गुणनिको हीनता अधिकता रहित, अर निरवधयः कहिये कालकी मर्यादारहित भये सते निःश्रेयस जो निर्वाण तामे सुखरूप जैसैं होय तैसैं बसते हैं ।

भावार्थ :—धर्मके प्रभावतैं आत्मा नि श्रेयसमे वसै है । केवलज्ञान केवलदर्शन, अनन्तशक्ति, परमवीतरागनारूप निराकुलता, अनंतसुख, विषयनिकी निर्वाञ्छकता, कर्ममलरहितता इत्यादिक गुणरूप होय गुणनिकी हीनाधिकतारहित कालकी मर्यादारहित सुखरूप अनंतानत काल बसै है ।

अब और हू नि क्षेयसका स्वरूप कहै है :—

सिद्धों के विकार का अभाव है

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटु ॥

अर्थ :—अनंतानत कल्पकाल व्यतीत हो जाय तो हू मुक्तजीवनिकू विकार जो स्वरूपको अन्यथा-भाव सो नाही लखिये है, नाही प्रमाण-करि जानने योग्य है। बहुरि त्रैलोक्यके सभ्रम करने मे समर्थ ऐसा कोऊ उत्पात हू होय तोहू सिद्धनिकै विकार नाही होय है।

और हू सिद्धनिका स्वरूप कहै है :—

सिद्धों का स्वरूप

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते।
निःकिट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥

अर्थ :—निर्वाकू प्राप्त भये ऐसे मुक्तजीव है ते किट्टि अर कालिमारहित कातिमान सुवर्णवत् द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप मल-रहित प्रकाशमानस्वरूप भए त्रैलोक्यका शिखामणि की लक्ष्मीकू धारण करै है।

अर सन्यासके धारक पुरुष स्वर्गकू हू प्राप्त होय है :—

धर्मका फल

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥

अर्थ :—बहुरि सम्यक् धर्म है सो अभ्युदय फलति कहिये इन्द्रादिक पदवीकू फलै है। कैसाक अभ्युदयकू फलै है? जो पूजा अर अर्थ अर आज्ञा अर ऐश्वर्य करिकै अर बल परिकरका जन अर काम-भोगनिकी प्रचुरताकरि तीन भुवनकू उल्लघन करै अर त्रैलोक्यमे आश्चर्यरूप ऐसा अभ्युदयकू यो सम्यक् धर्म ही फलै है।

भावार्थ :—तीन लोकमे जो देखनेमे श्रवणमे चितवनमे नाही आवे ऐसा अद्भुत अभ्युदय सम्यग्धर्म ही का फल है। धर्मका प्रभवा ही तै इन्द्रपना अहमिंद्रपना पाइये है।

मरता अकेला जीव, एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण, अरु मुक्ति एकाकी करे॥
—नियमसार, गाथा १०१

४ समाधि-वर्णन

पं. दीपचन्द्र जी

विशेष विचार द्वारा धर्मग्राहक नयमे 'चिन्तानिरोध' और 'एकाग्र' ये दो भूमिकाए धर्मध्यान और शुक्लध्यान की कारण है तथा समाधि को सिद्ध करते है। इसके प्रमाण मे पद्मनन्दि-एकत्व सप्ततिका गा० ६४ का यह श्लोक है:—

"साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चिन्तानिरोधनम्।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचका ॥

चिन्तानिरोध और एकाग्रता से समाधि होती है, यही लिखता हूं।

समाधि की परिभाषा :—

राग आदि विकल्पोंसे रहित स्वरूपमें निर्विघ्न स्थिरता के साथ वस्तुरसके आस्वाद से स्वसंवेदन-ज्ञानके द्वारा जो स्वरूप का अनुभव होता है उसे 'समाधि' कहते हे।

समाधि की व्याख्या :—

कुछ लोग समाधिका कथन अग्रलिखित प्रकारसे करते है। श्वास-उच्छ्वास वायु है, उनको अन्तरमे भरे—पूरे उसे **'पूरक'** कहते है। इसके पश्चात् कुम्भ (घडे) की भाति जो भरता है और भरकर स्थिर करता है उसे **'कुम्भक'** कहते है। फिर जो धीरे-धीरे रेचन करे उसे **'रेचक'** कहते है। पाच घडी तक किये जानेवाले कुम्भनको **'धारणा'** कहते हैं और साठ घडी तक किये जानेवाले कुम्भकको **'ध्यान'** कहते हैं। आधेका किया जानेवाला कुम्भक **'समाधि'** कही जाती है और वह कारणसमाधि है। क्यो ? इसलिए कि मनकी जय होती है और मनकी जय करनेसे राग-द्वेप-मोह मिटते है और **राग-द्वेष-मोह मिटने से समाधि लगती है।** यदि मन स्थिर हो तो निज गुणरत्न प्राप्त किया जा सकता है अतः वह (मन) कारण है। कोई न्यायवादी न्याय के बल पर छहो मतोका निर्णय करते है, वहा समाधि नही, बल्कि विकल्प हेतु है।

जैन मत से मोक्ष का लक्षण:—

अत: जैनमतमे अरहतदेवने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, और मोक्ष, ये सात तत्त्व कहे है। दो प्रमाण कहे है, प्रत्यक्ष और परोक्ष। नित्य अनित्यादि अनेकान्तवाद सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं। **सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।**

(१) नैयायिक मत से मोक्ष का लक्षण—

नैयायिक मतमे, उनके जटाधारी ईश्वरदेवने प्रमाण, प्रमेय, सशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, ये **सोलह तत्त्व** वतलाये हैं। प्रत्यक्ष, उपमा, अनुमान और आगम, ये **चार प्रमाण** कहे है। नित्यादि एकान्तवाद, दु.ख, जन्मप्रवृत्ति दोष, मिथ्याज्ञानका उत्तरोत्तर नाम मोक्षमार्ग है।—छह इन्द्रियाँ, उनके छह विषय, छह बुद्धियाँ, शरीर, सुख और दु.ख, इन **इक्कीस** प्रकार के दु खो का अत्यन्त उच्छेद (क्षय) मोक्ष मानते है।

(२) बौद्ध मत से मोक्ष का लक्षण—

बौद्ध मतमे, उनके लाल वस्त्र धारण करनेवाले बुद्धदेवने दु.ख दु·ख आयतन, समुदाय, दु·ख निरोधरूप, मोक्षमार्ग, ये चार तत्त्व और प्रत्यक्ष तथा अनुमान, ये दो प्रमाण कहे हैं। क्षणिकैकान्तवाद अर्थात् सर्वक्षणिकवाद तथा सर्वनैरात्म्यवासना मोक्षमार्ग है। वासना का अर्थ है 'क्लेशका नाश' और ज्ञान (बुद्धि) के नाश का अर्थ है 'मोक्ष'।

(३) शैव मत से मोक्ष का लक्षण—

शैव मतमे शिवदेवने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छह तत्त्व तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम, ये तीन प्रमाणवाद बताये है। मोक्षमार्ग नैयायिकोकी भाति है बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और सस्कार, इन नौ का अत्यन्त नाश ही 'मोक्ष' कहा है।

(४) जैमिनीय मत से मोक्ष का लक्षण—

जैमिनीय अर्थात् भट्ट मत मे देव नही माना गया है। प्रेरणा (वेद)

रूप, लक्षण, और धर्म ये तीन तत्त्व माने गये है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम अर्थापत्ति और अभाव, ये छह प्रमाण है। नित्य एकान्तवाद और वेदविहित आचरणको मोक्षमार्ग कहा गया है। नित्य अतिशयको धारण करनेवाले सुखका व्यक्त हो जाना ही 'मोक्ष' है।

(५) सांख्य मत से मोक्ष का लक्षण—

साख्य मतके बहुत भेद हैं। कोई ईश्वरदेव (कोई शिव, नारायण) को मानते है। और कोई कपिलको मानते है। पच्चीस तत्त्व है। राजस, तामस और सात्त्विक अवस्थाओका नाम प्रकृति है। प्रकृतिसे महत् (महत्तत्त्व) उत्पन्न होता है, महत्से अहङ्कार, अहकारसे पाच तन्मात्रायें, ग्यारह इन्द्रियां होती है। उन (पाच तन्मात्राओ) मेसे स्पर्श-तन्मात्रासे वायु, शब्द-तन्मात्रासे आकाश, रूप-तन्मात्रासे तेज (अग्नि,) गन्ध-तन्मात्रासे पृथ्वी और रस-तन्मात्रासे जल उत्पन्न होता है। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाच बुद्धीन्द्रिया तथा-वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुप्तेन्द्रिय, ये पाच कर्मेन्द्रिया तथा ग्यारहवा मन है। पुरुष अमूर्त, चैतन्यरूपी, कर्ता और भोक्ता है। मूल प्रकृति विकृतिरहित है, महान् आदि सात तत्त्व न प्रकृतिरूप है और न विकृतरूप, सोलह गण विकृतिरूप है और पुरुष न प्रकृतिरूप है और न विकृतिरूप परन्तु पंगुवत् प्रकृति और पुरुषका योग होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण हैं। नित्य एकान्तवाद और पच्चीस तत्त्वोंका ज्ञान मोक्षमार्ग है। प्रकृति और पुरुषके विवेक देखनेसे प्रकृति मे स्थित **पुरुषका भिन्न होना सो मोक्ष है।**

(६) नास्तिक (चार्वाक) मत से मोक्ष का लक्षण—

सातवे मत नास्तिक (चार्वाक) मे देव, पुण्य-पाप और मोक्ष कुछ नही माने गये है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, ये चार भूत और एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है। चारो भूतोके समवाय (संयोग) से चैतन्यशक्ति उत्पन्न होती है जैसे मादक सामग्रीके समवायसे मदशक्ति (नशा) उत्पन्न होता है। अदृश्य सुखका त्याग और दृश्य सुखका भोग ही पुरुषार्थ है।

वे सभी भेद, **निर्णय करने पर समाधि नहीं ठहरते।**

समाधि के तेरह भेदः—

समाधि के तेरह भेद ये हैं—(१) लय (२) प्रसज्ञात (३) वितर्कानुगत, (४) विचारानुगत, (५) आनन्दानुगत, (६) अस्मिदानुगत, (७) निर्वितर्कानुगत, (८) निर्विचारानुगत, (९) निरानन्दानुगत, (१०) निरास्मिदानुगत, (११) विवेकख्याति, (१२) धर्ममेघ और (१३) असप्रज्ञात। ये तेरहो भेद समाधि के है। उनमेसे असप्रज्ञातके दो भेद हैं, एक प्रकृति लय और दूसरा पुरुष लय।

१ लय समाधिः—

प्रथम लय समाधिका कथन करता हूं। लय अर्थात् परिणामोकी लीनता, निज वस्तुमे परिणाम प्रवर्तन करे, रागद्वेप मोह [श्रद्धामेसे, स्वामित्वमेसे] मिटाकर दर्शन ज्ञानमय अपने स्वरूपको प्रतीतिमे अनुभव करे, जैसे शरीरमे आत्मबुद्धि थी वैसे ही आत्मामे आत्मबुद्धि धारण करे, व जहा तक बुद्धि स्वरूपमेसे वाह्य न निकसे (-च्युत न हो) वहा तक **निजमें लीन उसको समाधि कहनी**। लयका तीन भेद-शब्द, अर्थ और ज्ञान, 'लय' ऐसा शब्द शब्द हुआ, निजमे परिणाम लीन ऐसा उसका अर्थ हुआ, शब्द-अर्थका जानपना वह ज्ञान हुआ। तीनो भेद लय समाधिके है। शब्दागमसे अर्थागम, अर्थागमसे ज्ञानागम। ऐसा श्री जिनागममे कहा है।

कोई प्रश्न करता है कि शब्द क्यो कहा? उसका उत्तर शुक्लध्यान के भेदमे शब्दान्तर कहा गया है, इसी रीतिसे जानना चाहिए। जहा द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारसे वस्तुमे लीन होना, ज्ञानमे परिणाम आया, उसीमे लीन हुआ, दर्शनमे आया, उसीमे लीन हुआ। निजमे विश्राम, आचरण, स्थिरता और ज्ञायकता द्वारा लय समाधिके विकल्पभेदको नष्ट करके निजमे वर्तते है, जिन-जिन इन्द्रियविषयक परिणामोने इन्द्रियोपयोग नाम धारण किया था और सकल्प-विकल्प रूप जिस मनने उपयोग नाम पाया था उन दोनो प्रकारके उपयोगोंके छूटने पर बुद्धि द्वारा ज्ञानोपयोग उत्पन्न होता है। वह जानपना बुद्धि से पृथक् है। ज्ञान-ज्ञानरूप परिणति द्वारा ज्ञानका वेदन करता है, आनन्द प्राप्त करता है और स्वरूपमे लीन होकर तादात्म्यरूप हो जाता है। जहा-जहा परिणाम विचरण करते है वहां-वहां श्रद्धा

करके लीन होते है अत: द्रव्य-गुणमें परिणामोंके विचरण करते समय जब, जहा श्रद्धा हा वहीं लीनता हो जावे तब लय समाधि होती है। ऐसा जानना ।

२. प्रसंज्ञात समाधि:—

इसके पश्चात् प्रसज्ञात समाधिके भेदोंका कथन करता हूं। सम्यक्त्व को जाने और उपयोगमे ऐसे भावकी भावना करें कि चेतनाका प्रकाश अनन्त है, परन्तु दर्शन-ज्ञान-चरित्र मुख्य है और मेरी दृश्यशक्ति निर्विकल्प उत्पन्न होती है। ज्ञानशक्ति विशेष जाने। चारित्र-परिणामोके द्वारा वस्तुको अवलम्बसे, वेदन करके विश्रामसे आचरणकी स्थिरताको धारण करता है। कर्त्ता स्वय अपने स्वभावरूप कर्मको करके कर्त्ता होता है, (कर्म) स्वभाव कर्म होता है अत: (करण) निज परिणतिके द्वारा स्वयको स्वय साधता है—सिद्ध करता है, (सप्रदान) स्वयकी परिणति स्वयको सौपे (अपादान) स्वय मे स्वय, स्वयसे स्थापित करे, (अधिकरण) स्वयके भावका स्वय ही आधार है, स्वयके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पर भली-भाति विचार करके स्थिरतासे राग आदि विकारो को नही आने दे। जैसे-जैसे उपयोगकी जानकारी प्रवर्तन करे वैसे वैसे ध्यान की स्थिरतामें आनन्द बढ़ता है, और समाधिका सुख प्राप्त होता है। वीतराग, परमानन्द-समरसीभाव, स्व-सवेदन सुखको समाधि कहिये। द्रव्य-का द्रव्यीभाव, गुणका लक्षणभाव, पर्याय-परिणमनके लक्षण द्वारा वेदनाका भाव अर्थात् वस्तु-रसका सर्वस्व बतलानेवाला भाव, इनको सम्यक् प्रकारसे जानकर जो समाधि सिद्ध की जाती है उसे **प्रसंज्ञात समाधि कहते है।** इसके भी तीन भेद है, प्रसज्ञात शब्द सो शब्द, प्रसंज्ञात शब्दका अर्थ जो सम्यग्ज्ञानभाव वह अर्थ है, और शब्द अर्थका जानपना सो ज्ञान है। जाननेवालेको जानकर, मानकर तथा पुष्ट महा तद्रूप होकर जो समाधि धारण की जाती है उसे 'प्रसज्ञात समाधि' कहते है।

३. वितर्कानुगत समाधि:—

वितर्क—श्रुत; द्रव्यश्रुतसे विचार करना वह वितर्क श्रुत है। अर्थ में मन लगाना भावश्रुत कहलाता हैं। वीतराग निर्विकल्प

स्वसवेदन समरसीभावसे उत्पन्न आनन्द वह 'भावश्रुत' है। वह कैसे है, सो कहते हैं –

भावश्रुतके अर्थमे जहा भाव है; वहा द्रव्यश्रुतका अर्थ ऐसा है कि जहा द्रव्यश्रुतमे उपादेय वस्तुका वर्णन है वहा अनुपम, आनन्दघन चिदात्माके अनत चैतन्य चिह्नका अनुभव रसास्वाद बताया है, मन और इन्द्रियोके द्वारा चेतना विकार अनादिसे प्रवृत्ति कर रहा था वह शुभाशुभ विकारसे छुडाकर, श्रुतविचार द्वारा ज्ञानादि उपयोगोकी प्रवृत्तिसे अपना स्वरूप पहिचाना। जैसे किसी दीपकके ऊपर चार पडदे थे। उनमेसे तीन पडदे तो दूर हुये, प्रकाशको पहिचाना कि दीपक है, अवश्य है क्योकि प्रकाशका अनुभव हो रहा है, परन्तु जब चौथा पड़दा भी दूर होते ही कृतकृत्य परमात्म होकर निवरेगा (सिद्धपदको प्राप्त करेगा)।

अनुभवके प्रकाशकी जाति तो वही है, अन्य नही है। वैसे ही जब कषायकी तीन चौकड़िया नष्ट हुई तब चेतनाप्रकाश स्वजातिज्योति का अनुभव निजवेदनसे हुआ तब चेतनाप्रकाशका अनुभव ऐसा होता है कि परमात्मभाव आनंद, इस भाव श्रुतआनन्दमे प्रतीतिरूप मानो सपूर्ण प्राप्त हुआ है।

कोई ऐसी वितर्कना (प्रश्न) करता है कि ज्ञानका विशेष लक्षण अवयवोका जाननेवाला है और दर्शन सामान्यविशेषरूप पदार्थको निर्विकल्प सत्तामात्र अवलोकनरूप है सो जब ज्ञान दर्शनको जाने तब वहा ज्ञानमे सामान्य अवलोकन कैसे हुआ? और दर्शन ज्ञानको भी देखता है, ज्ञान दर्शनको जानता है सो दर्शन तो सामान्य है, सामान्यको जाननेसे सामान्यका ज्ञान होगा। तब वहा विशेषका जानना कैसे हुआ?

इसका समाधान है कि चित्प्रकाशमे ऐसा सिद्ध होता है। ज्ञान, दर्शनके सब प्रदेशोको जानता है, (ज्ञान) दर्शनका स्व-पर देखना सर्व जानता है, ज्ञान,—दर्शनका लक्षण, सज्ञा आदि भेद और द्रव्य-क्षेत्र आदि सब भेद जानता है अत [स्पष्ट है कि] ज्ञान, दर्शनके विशेषोको जानता है। और ज्ञान को दर्शन कैसे देखता है, इस प्रश्न का समाधान यह है कि 'जानना'- वह ज्ञानका सामान्य लक्षण तथा

स्वपरको जानना वह ज्ञानका विशेष लक्षण इन दोनों लक्षणमय ज्ञान है, सज्ञा आदि भेदोके धारक ज्ञान उसको (-दर्शनको) निर्विकल्परूप देखता है; इसलिये दर्शन (चेतना) सामान्य अवलोकवाली हुई, एक चेतनसत्तासे दोनोका प्रकाश हुआ है।

सत्ता दोनोकी एक है। ऐसा तर्क समाधान करनेवाले से भावश्रुतमे हुआ है। इस भावश्रुतका नाम वितर्क है इसके अनुगत अर्थात् उसकी साथ ही जो सुख हुआ सो समाधि है, [वह समाधि] भावश्रुतके विलाससे और चित्प्रकाशको जाननेसे, वेदन करनेसे, अवलोकन करनेसे और अनुभव करनेसे (छद्मस्थको) होती है। ज्ञाताको अपने आनन्दरूप समाधि उत्पन्न होती है। उसके तीन भेद है, प्रथम तो वितर्क शब्द, दूसरा उसके अर्थश्रुतवितर्कका अर्थ और अर्थका ज्ञान वह ज्ञान। शब्दसे अर्थ, अर्थसे ज्ञान और ज्ञानसे होनेवाली आनन्दरूप समाधि है। इस तरह वितर्क समाधिका स्वरूप कहा गया सो जानना चाहिये।

४. विचारानुगत समाधि :—

'विचार' का अर्थ है श्रुतका पृथक्-पृथक् अर्थ विचारना। श्रुतके अर्थ द्वारा स्वरूपके विचारमे वस्तुकी स्थिरता, विश्राम, आचरण, ज्ञायकता, आनन्द, वेदना, अनुभव और निर्विकल्प समाधि होती है सो कहते है। अर्थ कहने पर ध्येयरूप वस्तु या द्रव्य या गुण या पर्याय। द्रव्य पर अनेक प्रकारसे विचार हो सकता है, गुण पर्यायके रूपमे, सत्ताके रूपमें, चेतनापुजके रूपमे। इसप्रकार द्रव्यका विचार करके जब प्रतीतिमे लीन हुआ तब समाधि होती है। आत्माका अनुभव करता है, केवल विचार ही नही करते, गुण ज्ञानका प्रकाश उसको विचार कहते है वह जब प्राप्त होय वही ध्यान है। पर्यायको स्वरूपमे लीन करे, द्रव्यसे गुणमे मन लगावे, गुणसे पर्यायमे लगावे या कि और प्रकारसे भी ध्येयका ध्यान करना अर्थान्तर कहलाता है या फिर सामान्य विशेष भेदाभेदसे वस्तुमे ध्यान धारण करके सिद्धि करे सो अर्थसे अर्थान्तर कहलाता है।

शब्दका अर्थ है वचन, वह दो प्रकारका है, एक द्रव्य वचन और दूसरा भाव वचन। यहा भाव वचनसे तात्पर्य है।

भाव श्रुतका अर्थ है वस्तुके गुणमे लीनता। भाव वचनमे गुण-विचार द्वारा जो आया सो फिर और गुण-विचार न करके स्थिरता द्वारा आनन्द होता है। और-और विचार जो वस्तुको प्राप्त करनेके लिये शब्द द्वारा अन्तरङ्गमे होते हैं उन्हे शब्दान्तर कहते हैं। मै द्रव्य हू, ज्ञान गुण हू, दर्शन हू, वीर्य हू, उपयोगमे ऐसा जान करके 'अहं' अर्थात् स्वय अपने पदमें द्रव्य-गुणके द्वारा 'अहं' रूप शब्दकी कल्पना करके प्रतीत्यस्वपदके स्थान पर स्वरूपाचरण द्वारा आनन्द-कन्दमे सुख होता है सो समाधि है, वचनयोगके भावसे गुणस्मरण हुआ। विचार तक ही वचन था सो विचार छूट गया और लीनतामे मन ही रह गया। वचनयोगसे छूटकर मनोयोगमे आया सो योगसे योगान्तर कहलाता हैं। विचारानुगत समाधिके तीन भेद है, विचार शब्द, ध्येय वस्तुरूप विचारका अर्थ, तथा ध्येय वस्तुको विचारसे जाननेरूप ज्ञान। अथवा जो विचारमे आवे उस उपयोगमे परिणाम की स्थिरता ही ध्यान है, उससे उत्पन्न हुआ जो आनन्द उसमे लीनता, वीतराग निर्विकल्प समाधि है उसीका नाम 'विचारानुगत समाधि है।

५—आनन्दानुगत समाधिः—

ज्ञानके द्वारा निज स्वरूपको जाने, जानते समय जो आनन्द होता है उसे ज्ञानानन्द कहते हैं, दर्शनके द्वारा निज पदको देखनेपर आनन्द हो वह दर्शनानन्द कहलाता है, निज स्वरूपमे परिणमनसे होनेवाला आनन्द चारित्रानन्द है, आनन्दका वेदन करनेवालेकी सहज ही अपने-अपने दर्शनज्ञानमे जब परिणति रहती है तब आनन्द जानना। जब ज्ञान, ज्ञानका भी ज्ञान करने लगता है, दर्शनको देखने लगता है और वेदन करनेवालेका भी वेदन करने लगता हैं तब चेतना प्रकाशका आनन्द होता है। स्वयका स्वय द्वारा वेदन करनेसे अनु-भवमे जो सहज चिदानन्द स्वरूपका आनन्द होता है वह आनन्दका सुखमें समाधिका स्वरूप होता है। वस्तुका वेदन कर-करके ध्यानमे आनन्द होता है। आनन्दकी धारणा धारण करके जब स्थिर रहा जाता है तब 'आनन्दानुगत समाधि' हुई कही जाती है। जीव और कर्मके अनादि सबन्धसे बँधे रहनेके कारण [दोनोके] एकत्वकी-सी दशा, अव्यापकमे व्यापक हो रही है; उसको भेदज्ञान बुद्धिसे जीव

और पुद्गलको पृथक्-पृथक करे जाने, नो कर्म तथा द्रव्यकर्मकी वर्गणा जड एवं मूर्तिक है और मेरा जाननरुप ज्ञानोपयोगपना लक्षण द्वारा पृथक्-पृथक् प्रतीतिमे जाने, [ऐसा निर्मल ज्ञान होनेपर] जहा स्वरूपमे मग्नता हुई, तो स्वरूप मग्नताके होते ही आनन्द हुआ।

आनन्द शब्द, आनन्द शब्द का आनन्द अर्थ और आनन्द शब्द एव आनन्द अर्थ को जाननेवाला ज्ञान, ये तीन भेद आनन्दानुगत समाधिमे लगाने। जहा आनन्दानुगत समाधि है वहा सुखका समूह है।

६—अस्मिदानुगत समाधि :—

पर पदको आत्मा मानकर अनादिसे जन्म आदि दु.ख सहे, परन्तु एक अस्मिदानुगत समाधि नही प्राप्त की। उस (दु ख)को दूर करने के लिए श्री गुरुदेव इस समाधिका कथन करते हैं। 'अह ब्रह्मोऽस्मि' (मै ब्रह्म हू) अर्थात् मै शुद्ध चैतन्यमय परम ज्योति हू, जीवका प्रकाश दर्शन-ज्ञान है, जीव सदा प्रकाशित होता है। ससार मे शुद्ध परमात्मा के शुद्ध दर्शन-ज्ञान और अन्तरात्माके एकदेश शुद्ध दर्शन-ज्ञान होता है। दर्शन-ज्ञान प्रकाश ज्ञेयको देखता-जानता है, वह शक्ति शुद्ध है, उसमे ऐसे भाव करता है कि यह दर्शन-ज्ञान आत्माके बिना नही होता, ज्ञान-दर्शन को प्रतीति मे मानना ही मेरा स्वभाव है। **'अहं अस्मि'** अर्थात् 'मै हू' के रूपमे दर्शन-ज्ञानमे स्वयकी स्थापना करे और ध्यानमें 'अह अस्मि', 'अह अस्मि' ऐसे माने। जैसे शरीरमे अहबुद्धि धारण करके उसे आत्मा मानता है वैसे दर्शन-ज्ञानमे अहत्व मानकर उसमे अहबुद्धि धारण करे, दर्शनज्ञान मे ध्यानमे अहंपना माने तब अनादि दु खका मूल देहाभिमान छूटता है। स्वरूप मे आत्मा को जाने, और ज्ञानस्वरूप उपयोग मैं हूं ऐसी अह ब्रह्मबुद्धि आवे; ब्रह्ममे अहबुद्धि आने पर ऐसा सुख प्राप्त होता है कि मानो दुःखलोकको छोडकर अविनाशी आनन्दलोक प्राप्त किया। 'अहंब्रह्म, अहब्रह्म अहब्रह्मोऽस्मि' ऐसी प्रतीति बार-बार बुद्धि द्वारा करे तब कुछ समय तक ध्यानमे ऐसा प्रतीतिभाव दृढ रहे। इसके पश्चात् क्रमश. अहपना छूट जाता है और केवल 'अस्मि' रह जाता है अर्थात् 'मै चैतन्य हू' यह भाव रह जाता है। जब 'मैं' चैतन्य हू, ऐसा भाव रह जाय 'हू, हूं', ऐसा भाव रह जाय, तब परमानन्द बढे है, वचनातीत महिमाका लाभ होता है,

स्वपदकी प्रतीतिरूप स्थिति रहती है, इसीको 'अस्मदनुगत समाधि' कहते हैं, इससे अपूर्व आनन्दकी वृद्धि होती है। स्वरूपमे 'अह अस्मि' शब्द, 'अह अस्मि' का भाव अर्थ तथा उसका जानपना वह ज्ञान, ये तीन भेद इसमें भी लगाना।

७—निर्वितर्कानुगत समाधि :—

अभेद निश्चिल स्वरूपभाव, द्रव्य या गुणमे, जहा वितर्कणा नही ऐसी निश्चलतामे निर्विकल्प निर्भेद भावना है तथा एकाग्र स्वस्थिर स्वपद मे लीनता है वहा 'निर्वितर्क समाधि' कही जाती है। निर्वितर्क ऐसा शब्द, निर्वितर्क अर्थात् तर्करहित स्वपद लीनता ऐसा अर्थ एव इनका जानपना वह ज्ञान, ये तीन भेद इसमे भी लगाना।

८—निर्विचारानुगत समाधि :—

अभेद स्वादमे एकत्व अवस्था जानो, उसमे विचार नही होता, स्वरूप भावनाकी निश्चिलवृत्ति हुई। वह द्रव्यमे हो तो भी निश्चल गुणभावनामे हो तो भी निश्चल और पर्यायवृत्तिकी निश्चिलता होनेसे राग आदि विकार मूल से नष्ट हुये, सहजानन्द समाधि प्रकट हुई, निज विश्राम प्राप्त हुआ विशुद्धता द्वारा विशुद्ध होते चले, स्थिरता प्राप्त की, निर्विकल्प दशा हुई, अर्थ से अर्थान्तर, शब्द से शब्दान्तर और योग से योगान्तर का विचार (पलटना) नष्ट हुआ, भेद-विचार विकल्पनय छूट गये, परमात्म-दशाके नजदीक आया, उसे 'निर्विकार समाधि' कहिये। निर्विचार ऐसा शब्द, विचाररहित ऐसा अर्थ और उसका जानपना वह ज्ञान ये तीनो भेद लगाना।

९—निरानन्दानुगत समाधिः—

सपूर्ण सासारिक आनन्द छूटा, इन्द्रियजनित विपयवलभ दशा दूर हुई, विकल्प-विचारसे होनेवाला आनन्द मिथ्या जाना, परमिश्रित आनन्द जो आता था सो गया, सहजानन्द प्रकट हुआ, परम पदवी की समीप भूमिका पर आरूढ हुआ जहा विभाव मिटा वहा ऐसा जाना कि यह मुक्ति के द्वारका प्रवेश समीप है, मुक्तिरूपी वधूसे निर्विघ्न सबन्ध समीप है तथा अतीन्द्रिय भोग होनेवाला है, ऐसा जाना, यह 'निरानन्दानुगत समाधि' है। निरानन्द ऐसा शब्द

परानन्द रहित ऐसा अर्थ और उसको जाननेरूप ज्ञान, ये तीन भेद इसमें भी समझना।

१०—निरस्मिदानुगत समाधिः—

पहिले 'ब्रह्म अह अस्मि (ब्रह्म मे हूँ)' में ऐसा 'अस्मि (हूँ) भाव था परन्तु अब वह भाव भी दूर हुआ अत्यन्त विकार मिटा, 'अस्मि' की मान्यता थी [सो] वह भी मिटी। निज पद ही का विलास (खेल) है, परका बल न हुआ, परम साधक है परम साध्यसे भेट हुई ओर ऐसी हुई कि मन गल गया, स्वरूपमें स्वसवेदन द्वारा स्वयं आत्माने आत्माको जाना और परमात्माकी दशा समीपसे भी समीपतर हुई। परम विवेक प्राप्त करनेका सोपान है। मानरूप विकार गया, विमल चारित्रका खेल (विलास) हुआ, मनकी ममता मिटी, स्वरूपमे तदाकार होकर ऐसा एकमेकरूप हुआ, आनन्द प्राप्त हुआ कि वह केवलिगम्य ही है। जिस समाधिमें सुखकी कल्लोल उठती है, दु खरूप उपाधि मिट चुकी, आनन्दरूपी गृहको जा पहुचा, चू कि राज्य-ही-राज्य करना रहा है, वह समीप ही राज्यका कलशाभिपेक होगा, केवलज्ञान राजमुकुट किनारे धरा है (समीप ही स्थित है) समय नजदीक है, सिरपर अब ही केवलज्ञानरूपी मुकुट धारण करेगा। यह 'निरअस्मिदानुगत समाधि' है। शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनो इसमे भी लगावने।

११—विवेकख्याति समाधिः—

विवेकका अर्थ है प्रकृति और पुरुषका विवेचन अर्थात् पृथक्-पृथक् भेद जानना। पर भेद मिटा। शुद्ध चित्परिणति चैतन्य पुरुषके ज्ञानमे दोनोकी प्रतीति अर्थात् विवेक हुआ। चित्परिणति वस्तु, वस्तुके अनन्त गुणोका वेदन करनेवाली है, उत्पाद-व्यय करनेवाली है, पड्गुणी वृद्धि-हानि उसका लक्षण है और वह वस्तुका वेदन करके आनन्द उत्पन्न करती है। जैसे समुद्रमे तरंग उत्पन्न होती है वह तरग समुद्रभाव को जनाती है। वैसे ही वह स्वरूपका ज्ञान कराती है। सकल सर्वस्व परिणति का अर्थ है प्रकृति, और पुरुपका अर्थ है परमात्मा, उससे प्रकृति उत्पन्न होती है, जैसे समुद्रसे तरंग उत्पन्न होती है। पुरुप अनन्त गुणधाम, चिदानन्द परमेश्वर है।

उन दोनोका ज्ञानमे जानपना हुआ परन्तु प्रत्यक्ष नही हुआ, वेद्य-वेदकमे प्रत्यक्ष है पर वह प्रत्यक्ष वैसा नही जैसा संपूर्ण केवलज्ञानमे होता है। अत: अभी तो वह साधक है, थोड़े ही समयमे परमात्मा होगा। इसीको 'विवेकख्याति समाधि' कहते है। शब्द, अर्थ और ज्ञानके रूपमे तीन भेद इसके भी होते है।

१२—धर्ममेघ समाधि :—

धर्म का अर्थ है अनन्त गुण अथवा निजधर्मरूप उपयोग जिसकी विशुद्धता मेघकी भाँति बढी, जैसे मेघ वर्षा करते है वैसे ही उपयोग मे आनन्द बढा, विशुद्धता बढी। अनन्तगुण चारित्ररुप उपयोगमे शुद्ध प्रतीतिका वेदन हुआ और यदि केवलज्ञानकी अपेक्षासे कहा जावे तब तो अनन्त गुण व्यक्त हुये। ज्ञानोपयोगमे चारित्र तो शुद्ध होता है पर वहाँ केवलज्ञान नही भी हो सकता है, बारहवे गुणस्थानमे चारित्र तो शुद्ध है परन्तु केवलज्ञान नही, बारहवे गुणस्थानमे यथाख्यात चारित्र है। तेरहवे चौदहवे गुणस्थानमे परम यथाख्यात चारित्र है अत चारित्रकी अपेक्षा धर्ममेघसमाधि बारहवे गुणस्थानमे हुई। केवल [ज्ञान] मे परमात्मदशा व्यक्त है अत: वहाँ (केवलीको) साधक-साधि न कही जा सकती, यहाँ साधक है, बारहवें गुणस्थानमे अन्तरात्मा है साधक है उसको 'धर्ममेघ समाधि' कहते हैं। शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीन भेद इसमे भी समझना चाहिए।

१३—असंप्रज्ञात समाधिः—

'असप्रज्ञात' का अर्थ है परका वेदन नही, निज ही का वेदन करे-जाने। जिसके परका विस्मरण है और निजका अवलोकन है ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्तीके अन्तिम समय तक तो चारित्रके द्वारा परकी वेदना मिटी, क्योकि मोहका अभाव हुआ। तेरहवें गुणस्थानमे ज्ञान केवल अद्वैत ज्ञान हुआ। उसमे, ज्ञानमे निश्चयसे परका जानपना नही, व्यवहारसे लोकालोक प्रतिबिम्बित होते है अत ऐसा कहा जाता है। अत यह समाधि चारित्रकी विवक्षासे बारहवे गुणस्थानके अन्तमे है और केवलज्ञानमे व्यक्त है, वहा साधक अवस्था नही (परन्तु) प्रकट परमात्मा है। यही असंप्रज्ञात समाधिका भेद

जानना। उक्त ज्ञान आदि तीन भेद, साधक अवस्थामें इसके भी समझना चाहिए।

ग्रन्थका उपसंहार

ये तेरह भेद समाधिके हैं जो परमात्माको प्राप्त करनेके साधन है। अत: इस ग्रन्थमे परमात्माका वर्णन किया और तत्पश्चात् उसे प्राप्त करनेका उपाय बताया। जो परमात्माका अनुभव करना चाहे वे इस ग्रन्थ पर बारम्बार विचार करे।

अन्तिम मंगल

देव परम मंगल करौ परम महा सुखदाय।
सेवत शिवपद पाइये है त्रिभुवन के राय॥

❀ हमकौं कछु भय ना रे ❀

हमकौं कछु भय ना रे, जान लियौ संसार॥ टेक॥
जो निगोद में, सो ही मुझ मे, सोही मोख मझार।
निश्चय भेद कछु भी नाहीं, भेद गिनै ससार॥
हमको कछु भय ना रे०
परवश ह्वै आपा विसारिकैं, राग द्वेष कौं धार।
जीवन मरन अनादि कालतै, यौं ही है उरझार॥
हमको कछु भय ना रे०
जा करि जैसै जाहि समय मे, जो हो तब जा द्वार।
सो बनि हैं टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार॥
हमको कछु भय ना रे०
अगनि जरावै, पानी बोवै, बिछुरत मिलत अपार।
सो पुद्गल रूपी, मै 'बुधजन' सबकौ जानन हार॥
हमको कछु भय ना रे०

५ सल्लेखनाधर्म व्याख्यान

आचार्य अमृतचन्द्र

इयमेकैव समर्था धर्मस्वं मे मया समं नेतुम् ।
सततमिति भावनीया पश्चिमसल्लेखना भक्त्या ॥

अन्वयार्थ :—[इयम्] यह [एका] एक [पश्चिमसल्लेखना एव] मरणके अन्तमे होनेवाली सल्लेखना ही [मे] मेरे [धर्मस्व] धर्मरूपी धनको [मया] मेरे [सम] साथ [नेतुम्] ले जानेमे [समर्था] समर्थ है [इति] इस प्रकार [भक्त्या] भक्ति सहित [सततम्] निरन्तर [भावनीया] भावना करनी चाहिए ।

टीका.—'इयम् एकैव मे धर्मस्व मया सम नेतुम् समर्था इति इतौ पश्चिमसल्लेखना भक्त्या सतत भावनीया ।' अर्थ.—यह मात्र अकेली सल्लेखना ही मेरे धर्मको मेरे साथ ले जानेमे समर्थ है इसलिए हर एक मनुष्यको इस अन्तिम सल्लेखना अथवा **समाधिमरणकी भक्ति-पूर्वक सदा भावना करना चाहिये** ।

भावार्थ :—ससार के कारण **मिथ्यात्व तथा क्रोधादि कषाय** और उन्हीके निमित्त कारण आहार आदि परिग्रहमे इच्छा है । (स्वसन्मुखताके बलके द्वारा) इन सभीका घटाना ही सल्लेखना कहलाता है । यह सल्लेखना भी दो प्रकारकी है । एक क्रम क्रमसे त्याग करना और दूसरी सर्वथा त्याग करना (अर्थात् अनुक्रम से आहार का कम करना अथवा सर्वथा त्याग करना कार्य सल्लेखना है तथा क्रोधादि कषायका घटाना अथवा त्याग करना कषाय सल्लेखना है ।) अत· विचार करके श्रावकको अपने मरणके अन्त समय अवश्य ही सल्लेखना करनी चाहिए । मैने जीवनपर्यंन्त जो पुण्यरूप कार्य किया है तथा धर्म पालन किया है उस **धर्मरूपी धनको मेरे साथ ले चलनेको यह एक सल्लेखना ही समर्थ है** । (अब यदि मरण समय सन्यास धारण करेगे तो सर्व धर्म परलोकमे मेरे साथ जायगा और जो यहाँ परिणाम भ्रष्ट हो गए तो दुर्गतिमे गमन होगा इसलिए ऐसी भावना पूर्वक **श्रावकको अवश्य ही समाधिमरण करना योग्य है** ।

मरणान्तेऽवश्यमहं विधिना *सल्लेखनां करिष्यामि ।
इति भावनापरिणतोऽनागतमपि पालयेदिदं शीलम् ।।

अन्वयार्थ :—[अहं] मै [मरणान्ते] मरणके समय [अवश्य] अवश्य [विधिना] शास्त्रोक्त विधिसे [सल्लेखना] समाधिमरण [करिष्यामि] करूंगा [इति] इस प्रकार [भावना परिणत.] भावनारूप परिणति करके [अनागतमपि] मरणकाल आनेसे पहले ही [इद] यह [शीलम्] सल्लेखनाव्रत [पालयेत्] पालना अर्थात् अंगीकार करना चाहिये ।

टीका :—'अहं मरणान्ते अवश्य विधिना सल्लेखना करिष्यामि—इति भावना परिणतः अनागत अपि शील पालयेत्' ।—**अर्थ.**—मै मरण समय अवश्य ही विधिपूर्वक समाधि-मरण करूंगा—ऐसी भावना सहित श्रावक, जो प्राप्त नही हुआ है ऐसे शील (स्वभाव) को प्राप्त कर लेता है । [सल्लेखना कहो या सन्यास कहो उसका धारण तो मरणान्तमे होगा अर्थात् समय समय इस जीवकी **आयु घटनेकी अपेक्षा प्रति समय मरण हो रहा है ।** और उसके अन्तमे सन्यास धारण किया जायेगा परन्तु पहलेसे ही ऐसी प्रतिज्ञा करना कि मै मरणकालमे सन्यास धारण करूंगा ही—अत इस प्रतिज्ञाकी अपेक्षा यह शील पहले ही पालन करनेमे आ जाता है ।]

भावार्थ :— श्रावकको इस बातका विचार सदैव करना चाहिए कि मैं अपने मरण के समय अवश्य सल्लेखना धारण करूंगा । कारण कि मरण समय प्राय मनुष्यो के परिणाम बहुत दु.खी हो जाते है तथा कुटुम्भजनो व धनादिसे ममत्वभाव नही छूटता । **जिसका ममत्वभाव छूट जाता है उसीके सल्लेखना होती है ।** ममत्व-भाव छूटनेसे पापका बन्ध न होने के कारण नरकादि गतिका बन्ध भी नही होता, इसलिए मरण समय अवश्य ही सल्लेखना करनेके परिणाम रखना चाहिये ।

---

* सत् = सम्यक्प्रकारसे, लेखना = कषायको क्षीण-कृश करनेको सल्लेखना कहते हैं । उसके अभ्यन्तर और बाह्य दो भेद हैं । कायके- कृश करनेको बाह्य और अन्तरङ्ग क्रोधादि कषायोके कृश करनेको अभ्यन्तर सल्लेखना कहते हैं ।

सल्लेखना आत्मघात नहीं है :—

मरणेऽवश्यंयं भाविनि कषायसल्लेखनातनूकरणमात्रे ।
रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति ॥

अन्वयार्थ [अवश्यं] अवश्य [भाविनि] होनेवाले [मरणे 'सति'] मरण होने पर [कषायसल्लेखनातनूकरणमात्रे] कषाय सल्लेखनाके कृश करने मात्रके व्यापारमे [व्याप्रियमाणस्य] प्रवर्त्तमान पुरुपको [रागादिमन्तरेण] रागादिभावोके अभावमे [आत्मघात.] आत्मघात [नास्ति] नही है ।

टीका :—'अवश्य' भाविनि मरणे कषायसल्लेखनातनूकरणमात्रे रागादिमन्तरेण व्याप्रियमाणस्य आत्मघात. न अस्ति ।'

अर्थः—अवश्यभावी जो मरण है तब कषायके त्याग करते हुए, राग द्वेप विना ही प्राणत्याग करनेवाला जो मनुष्य है उसको आत्मघात नही हो सकता ।

भावार्थ :—यहा कोई कहेगा कि सन्यासमे तो अपघातका दोप आता है ? उसका समाधान—सल्लेखना करनेवाला पुरुष जिस समय अपने मरणको अवश्यम्भावी जानता है तब सन्यास अगीकार करके कषायको घटाता और रागादिको मिटाता है इसलिये अपघातका दोप नही है । उसकी ऐसी इच्छा नहीं है कि मै जबर्दस्तीसे मरण करू अपितु उसका अभिप्राय ऐसा है कि जब बलात्‌रूपसे मरण होने ही लगे तब मेरे परिणाम शुद्ध रहे और मै सासारिक विषय-भोगोसे ममत्व त्याग दू । उसके मरणमे यदि राग द्वेष हो तो आत्मघात होता है, किन्तु जो मनुष्य रागद्वेषका त्याग कर रहा है उसे आत्मघात हो सकता नही ।

आत्मघाती कौन है वह अब बताते है :—

यो हि कषायाविष्टः कुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रैः ।
व्यपरोपयति प्राणान् तस्य स्यात्सत्यमात्मवधः ।

अन्वयार्थ :—[हि] निश्चयसे [कषायाविष्टः] क्रोधादि कषायोसे घिरा हुआ [य] जो पुरुष [कुम्भकजलधूमकेतुविषशस्त्रैः] श्वासनिरोध, जल, अग्नि, विष, शस्त्रादिसे अपने [प्राणान्] प्राणोको [व्यपरोपयति] पृथक् करता है [तस्य] उसे [आत्मवध] आत्मघात

[सत्यम्] वास्तवमें [स्यात्] होता है।

टीका :—'हि यः (श्रावकः) कषायाविष्टः (सन्) कुम्भकजल—धूमकेतु—विष—शस्त्रैः प्राणान् व्यपरोपयति तस्य आत्मवधः सत्यम् स्यात्।'—**अर्थः** जो जीव क्रोधादि कषाय सयुक्त होकर श्वास निरोध करके अर्थात् फासी लगाकर, जलमे डूबकर, अग्निमे जलकर, विप भक्षण कर, या शस्त्रादिके द्वारा अपने प्राणोंका वियोग करता है उसको सदाकाल अपघातका दोप लगता है।

भावार्थ :- जो जीव क्रोध, मान, माया, लोभादि, कषायोकी तीव्रतासे (अथवा इष्टवियोगके खेदसे या आगामी निदानके वश होकर) अपने प्राणोका घात करता है उसको ही आत्मघातका दोष लगता है। विशेष :- सल्लेखनाधर्म (**समाधिमरण विधि**) मुनि और गृहस्थ दोनोके लिए है, सल्लेखना अथवा सन्यासमरणका एक ही अर्थ है, अतः बारह व्रतोके बाद सल्लेखनाका वर्णन किया है। इस **सल्लेखनाव्रतकी उत्कृष्ट मर्यादा बारह वर्ष तककी** है ऐसा श्री वीरनन्दी आचार्यकृत यत्याचार नामक ग्रन्थमे कहा है। जब शरीर किसी असाध्य रोगसे अथवा वृद्धावस्थासे असमर्थ हो जाय, देव—मनुष्यादिकृत कोई दुर्निवार उपसर्ग आ पडे कोई महा दुष्कालसे धान्यादि भोज्य पदार्थ दुष्प्राप्य हो जाये अथवा धर्मका नाश करने वाला कोई विशेष कारण उपस्थित हो जाय तब अपने शरीरको पके हुए पानके समान अथवा तेलरहित दीपकके समान स्वयमेव विनाशके सन्मुख हुआ जानकर, सन्यास धारण करे। यदि मरणमे किसी प्रकारका सन्देह हो तो मर्यादापूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा करे, कि जो इस उपसर्गमे मेरा आयु पूर्ण हो गया तो (मृत्यु हो गई तो) मेरे आहारादिका सर्वथा त्याग है और यदि कदाचित जीवन शेप रहेगा तो आहारादिकको ग्रहण करू गा। यह सन्यास ग्रहण करनेका क्रम है।

रोगादिक होने पर यथाशक्ति औषध करे परन्तु जब रोग असाध्य हो जाय, किसी प्रकार भी उपचारसे लाभ न हो तो ऐसी दशामें यह शरीर, दुष्ट समान सर्वथा त्याग करने योग्य कहा है, और इच्छित फल दाता धर्म विशेषतासे पालन करने योग्य कहा है। शरीर तो मरनेके बाद दूसरा भी मिलेगा परन्तु **धर्मपालन करनेकी योग्यता**

प्राप्त करना अतिशय दुर्लभ है। इस कारण विधिपूर्वक शरीरके त्यागमे शोकाकुल—दुखी न होकर सयमपूर्वक मन—वचन - कायका **उपयोग आत्मामें केन्द्रित करना चाहिए** और 'जन्म जरा तथा मृत्यु शरीर सम्बन्धित है, मुझे नही है' ऐसा चिन्तवन करके निर्ममत्वी होकर विधिपूर्वक आहार घटाकर, अपने **त्रिकाली अकषाय ज्ञातामात्र स्वरूपके** लक्ष्यसे काय कृश करना चाहिए और **शास्त्रामृतके पानसे तथा स्वसन्मुखता द्वारा** कषायोको कृश करना चाहिए, पश्चात् चार प्रकारके सघ (मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका) की साक्षीसे समाधि-मरणमे सावधान उद्यमवन्त होना चाहिये।

अन्तकी आराधनासे चिरकालकी को हुई सम्यक् व्रत-नियमरूप धर्म-आराधना सफल हो जाती है, क्योकि उससे क्षणमात्रमे दीर्घकालसे संचित पापका नाश हो जाता है। और यदि अन्त मरण बिगड जाय अर्थात् असयमपूर्वक या शरीरमे एकताबुद्धिपूर्वक मृत्यु हो जाय तो जीवन भरकी की हुई **धर्माराधना निष्फल हो जाती है।**

यहा कोई प्रश्न करता है कि—"यदि अन्त समय समाधिमरण कर लेनेसे ही क्षणमात्रमे पूर्वसचित पापोका नाश हो जाता है तो फिर युवावस्थामे धर्म करनेकी क्या आवश्यकता है ? अन्त समय सन्यास धारण कर लेनेसे ही सब मनोरथ सिद्ध हो जायेगे" ? तो उसका समाधान—जो जीव अपनी पूर्वावस्थामे **धर्मसे विमुख रहे हैं** अर्थात् जिन्होने तत्त्वज्ञानपूर्वक व्रत-नियम आदि धर्माराधना नही की है वे जीव अन्तकालमे धर्मसन्मुख अर्थात् **सन्यासयुक्त कभी नहीं हो सकते।** क्योकि चन्द्रप्रभचरित्र प्रथम सर्गमे कहा है कि—"चिरन्तना-भ्यासनिबन्धनेरिता गुणेषु दोषषु च जायते मनि.' अर्थात् चिरकालके अभ्याससे प्रेरित करनेमे आई हुई बुद्धि गुण अथवा दोषोमे जाती है। जो वस्त्र पहलेमे ही उज्ज्वल हो तो उसके ऊपर मनपसन्द रङ्ग चढ सकता है किन्तु यदि वस्त्र पहलेसे हो मैला हो तो उसके ऊपर कभी रङ्ग नही चढ सकता। इसलिये समाधिमरण वही धारण कर सकता है जो **प्रथम अवस्थासे ही धर्मकी आराधनामे बराबर सावधान रहा हो।** हा, किसी स्थान पर कभी ऐसा भी देखनेमे आता है कि जिसने आजीवन धर्मसेवनमे चित्त नही लगाया हो वह भी अपूर्व

विवेकका बल प्राप्त करके समाधिमरण अर्थात् सन्यासपूर्वक मरण करके स्वर्गादिक सुखोको प्राप्त हो गया परन्तु वह तो **काकतालीय न्यायवत्** अति कठिन है (ताड़वृक्षसे फल टूटकर उडते हुए कौवेके मुखमे प्राप्त हो जाना जितना कठिन है उतना ही सस्कारहीन जीवनसे समाधिमरण पाना कठिन है ।) इसलिये सर्वज्ञ वीतरागके वचनोमे जिसे श्रद्धा है उसे उपरोक्त शकाको अपने चित्तमे कदापि स्थान नही देना चाहिये ।

समाधिमरणके इच्छुक पुरुष जहा तक बन सके वहां तक जिनेश्वर भगवानकी जन्मादि तीर्थभूमियोका आश्रय ग्रहण करे, 'जो ऐसा न बन सके तो मन्दिर अथवा सयमीजनोंके आश्रयमे रहे । सन्यासार्थी तीर्थक्षेत्रको जाते समय सभीसे क्षमा याचना करे तथा स्वय भी मन-वचन-कायपूर्वक सबको क्षमा करे । अन्त समयमे क्षमा करनेवाला संसारका पारगामी होता है और वैर-विरोध रखनेवाला अर्थात् क्षमा न रखनेवाला अनन्त ससारी होता है । सन्यासार्थीको पुत्र, स्त्री एव कुटुम्बीजनोसे तथा सासारिक सर्व सम्पदासे सर्वथा मोह छोडकर (**निर्मोही निज आत्माका भजन करना चाहिए ।**) उत्तम साधक धर्मात्माओ की सहायता लेनी चाहिए क्योकि साधर्मी तथा आचार्योकी सहायतासे अशुभकर्म यथेष्ट बाधाका कारण नही बन पाता । व्रतके अतीचारोको साधर्मियो अथवा आचार्यके सन्मुख प्रगट करके नि.शुल्क होकर प्रतिक्रमण-प्रायश्चित आदि शास्त्रमे वर्णित विधियोसे शोधन करना चाहिए ।

निर्मलभावरूपी अमृतसे सिंचित समाधिमरणके लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तरफ मस्तक रखे । जो श्रावक महाव्रतकी याचना करे, तो निर्णायक आचार्यको उचित है कि उसे महाव्रत देवे, महाव्रत ग्रहणमे नग्न होना चाहिये । अर्जिकाको भी अन्तकाल उपस्थित होने पर एकान्त स्थानमे वस्त्रोका त्याग करना उचित कहा गया है । सन्यास लेनेके समय (—समाधिमरणके पूर्वकी विधिके समय) अनेक प्रकारके योग्य आहार दिखाकर भोजन करावे । अथवा यदि उसे अज्ञानतावश भोजनमे आशक्त समझे, तो परमार्थके ज्ञाता आचार्य उसे उत्तम प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा ऐसे समझावे —

हे जिनेन्द्रि तूं भोजन, शयनादिरूप कल्पित पुद्‌गलोको अब भी उपकारी समझता है ! और ऐसा मानता है कि इनमेसे कोई पुद्‌गल ऐसा भी है कि जो मैंने कभी भोगा नही है। यह तो महान आश्चर्य-की बात है ! भला विचार तो कर कि यह मूर्तिक पुद्‌गल तेरे **अरूपीमे** क्या किसी प्रकार मिल सकता है ? मात्र इन्द्रियोके ग्रहण पूर्वक उसका अनुभव करके तूने ऐसा मान लिया है कि मै ही उसका भोग करता हू। तो हे ! दूरदर्शी, अब ऐसी भ्रान्त बुद्धिको सर्वथा छोड दे और **निर्मलज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वमें लवलीन हो**। यह वही समय है कि जिसमे ज्ञानी जीव शुद्धतामे सावधान रहता है और भेदज्ञानके बलसे चिन्तवन करता है कि 'मै अन्य हू और यह पुद्‌गल देहादि मेरेसे सर्वथा भिन्न जुदे ही पदार्थ हैं।' इसलिये **हे महाशय !** पर द्रव्योसे तुरन्त ही मोह त्याग और अपने आत्मामे निश्चल-स्थिर रहनेका प्रयत्न कर। यदि किसी पुद्‌गलमे आसक्त रहकर मरण पायेगा तो **याद रख कि** तुझे हलका-तुच्छ जन्तु होकर, इन पुद्‌गलो का भक्षण अनन्तबार करना पडेगा। इस भोजनसे तू शरीरका उपकार करना चाहता है जो किसी प्रकार भी उचित नही है। क्योकि शरीर इतना कृतघ्नी है कि वह किसीके किए हुए उपकारको नही मनता, इसलिये भोजनकी इच्छा छोडकर, केवल **आत्महितमे चित्त लगाना ही बुद्धिमत्ता है।**

इस प्रकार हितोपदेशरूपी अमृतधारा वर्षाकर अन्नकी तृष्णा दूर कराकर कवलाहार छुडावे तथा दूध आदि पेय पदार्थों पर रखे पश्चात् क्रम क्रमसे उसका भी त्याग करवाकर उष्ण जल लेने मात्रका नियम करावे। यदि ग्रीष्मकाल, मारवाड जैसा उष्णप्रदेश तथा पित्त प्रकृतिके कारण तृषकी पीड़ा सहन करनेमे असमर्थ हो तो मात्र शीतल जल लेनेका नियम रखे, और शिक्षा दे कि **हे आराधक! हे आर्य !** परमागममे प्रशसनीय, **मारणान्तिक सल्लेखना अत्यन्त दुर्लभ बताई है,** इसलिये तुझे विचारपूर्वक अतिचार आदि दोषोसे उसकी रक्षा करनी चाहिए।

पश्चात् अशक्तिकी वृद्धि देखकर, मरणकाल सन्निकट है ऐसा निर्णय होने पर आचार्य समस्त सघकी अनुमतिसे सन्यासमे निश्चलता

के लिये पानीका भी त्याग करावे। इस प्रकार अनुक्रमसे चारो प्रकारके आहारका त्याग होने पर समस्त सघको क्षमा करावे और निर्विघ्न समाधिकी सिद्धिके लिये कायोत्सर्ग करे। उसके बाद वचनामृतका सिंचन करे अर्थात् संसारसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाले कारणो का उक्त आराधकके कानमे, मन्द मन्द वाणीसे जप करे। श्रेणिक, वारिषेण, सुभगादिके दृष्टान्त सुनाये और व्यवहार-आराधनामे स्थिर होकर, निश्चयआराधनाकी तत्परताके लिये इस तरह उपदेश करे कि—

हे **आराधक!** श्रुतस्कन्धका 'एगो मे सासदा आदा' इत्यादि वाक्य 'णमो अरहन्ताणं' इत्यादि पद और 'अर्हं' इत्यादि अक्षर— इनमेसे जो तुझे रुचिकर लगे, उसका आश्रय करके अपने चित्तको उसमे **तन्मय कर!** हे आर्य! **'मै एक शाश्वत आत्मा हूं'** यह श्रुतज्ञानसे अपनी आत्मा का निश्चय कर! स्वसवेदनसे आत्माकी भावना कर! समस्त चिन्ताओ से पृथक् होकर प्राण विसर्जन कर! और यदि तेरा चित्त किसी क्षुधा परीषहसे अथवा किसी उपसर्गसे विक्षिप्त (व्यग्र) हो गया हो तो नरकादि वेदनाओका स्मरण करके **ज्ञानामृतरूप सरोवरमें प्रवेश कर।** क्योकि अज्ञानी जीव शरीरमे आत्मबुद्धि अर्थात् 'मै दु.खी हू, मै सुखी हू' ऐसा सकल्प करके दुखी हुआ करता है परन्तु भेदविज्ञानी जीव आत्मा और देहको भिन्न भिन्न मानकर देहके कारण सुखी दु.खी नही होता, किन्तु विचार करता है कि **मेरा मरण ही नहीं है तो फिर भय किसका?** मुझे रोग ही नही है तो फिर वेदना कैसी? मै बालक, वृद्ध या तरुण नही हू तो फिर मनोवेदना कैसी? हे **महाभाग्य!** इस तुच्छसे शारीरिक दुखसे कायर होकर प्रतिज्ञासे किञ्चित् मात्र भी च्युत मत होना, दृढ़चित्त होकर परम निर्जराकी अभिलाष करना। जबतक तू आत्मचिन्तन करता हुआ सन्यास ग्रहण करके समाधि मरणकी आराधनामे बैठा है, तबतक प्रतिक्षण तेरे प्रचुर कर्मोका विनाश हो रहा है! क्या तू **धीरवीर पाण्डवोका** चरित्र भूल गया है! जिन्हे लोहेके आभूषण अग्निसे तपाकर शत्रुओने पहनाये थे तो भी तपस्यासे किंचित् मात्र च्युत न होकर **आत्मध्यानसे मोक्ष प्राप्त किया!** क्या तूने महा

सुकुमार सुकुमालकुमारका चरित्र नही सुना है? जिनका शरीर स्यालनीने थोडा थोडा खा खा करके अतिशय कष्ट देनेके लिये कई दिन (तीन दिन) तक भक्षण किया था, परन्तु किंचित् मार्गच्युत न होकर जिन्होने सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग प्राप्त किया था। ऐसे असख्य उदाहरण शास्त्रोमे है जहा दुस्सह उपसर्ग सहन करके अनेक साधुओं ने स्वार्थसिद्धि की है। क्या तेरा यह कर्त्तव्य नही है कि उनका अनुकरण करके जीवन-धनादिकमे निर्वाछक होकर, अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रहके त्यागपूर्वक साम्यभावसे निरुपाधिमे स्थिर होकर आनन्दामृतका पान करे! इस तरह उपरोक्त उपदेशसे सम्यक् प्रकार कषायको कृश करके-कम करके रत्नत्रयकी भावनारूप परिणमनसे पच नमस्कार-मंत्र स्मरणपूर्वक समाधिमरण करना चाहिए। यह समाधिमरणकी सक्षिप्त विधि है।

माटी में मिल जाये

जिस काया पर अकड़ा रहता, तेरे साथ न जाये।
एक दिन यह माटी की काया, माटी मे मिल जाये॥

इस काया के नाम अनेको, पण्डित शोध धराए।
अमल अखंडित आतमराम को, अब तक जान न पाए॥
यह काया माया दो दिन की, साथ न आये जाये।
तन को अपना मान के चेतन, जग के चक्कर खाये॥

नाशवान काया पोषण को, पाप अनेक कमाये।
यह घट किस पनघट पर फूटे, पता न कोई पाये॥
जब यमराज आन का घेरे, तब भैय्या पछताये।
सर पर काल पुकार रहा है, कर ले जो कर पाये॥

निज को भूल भूलकर चेतन, लाखो जन्म गंवाये।
एक दिन यह माटी की काया, माटी मे मिल जाये॥

६ समाधि-मरण स्वरूप

पं० गुमानीराम जी

हे भव्य ! तू सुन ! अब समाधिमरणका लक्षण वर्णन किया जाता है। समाधि नाम निःकषायका है, शान्त परिणामोंका है, कषाय रहित शांत परिणामोसे मरण होना समाधिमरण है। संक्षिप्तरूपसे समाधिमरणका यही वर्णन है विशेषरूपसे कथन आगे किया जा रहा है।

सम्यक्ज्ञानी पुरुषका यह सहज स्वभाव ही है कि वह समाधि-मरण ही की इच्छा करता है, उसकी हमेशा यही भावना रहती है, अन्तमें मरण समय निकट आने पर वह इस प्रकार सावधान होता है जिसप्रकार वह सोया हुआ सिंह सावधान होता है जिसको कोई पुरुष ललकारे कि हे सिंह ! तुम्हारे पर बैरियोकी फौज आक्रमण कर रही है, तुम पुरुषार्थ करो और गुफासे बाहर निकलो। जब तक बैरियोका समूह दूर है तब तक तुम तैयार हो जाओ बैरियोकी फौजको जीत लो। महान् पुरुषोकी यही रीति है कि वे शत्रुके जागृत होनेसे पहले तैयार होते है।

उस पुरुषके ऐसे वचन सुनकर शार्दूल तत्क्षण ही उठा और उसने ऐसी गर्जना की कि मानो आषाढ मासमे इन्द्रने ही गर्जना की हो ! सिंह की गर्जना सुनकर बैरियो की फौजमें जो हाथी, घोड़े आदि थे वे सब कपायमान हो गये और वे सिंहको जीतनेमे समर्थ नही हुए। हाथियोने आगे कदम रखना बन्द कर दिया उनके हृदयमे सिंहके आकारकी छाप पड़ गई है इसलिये वे धैर्य नही धारण कर रहे, क्षण-क्षणमे निहार करते है, उनसे सिंहके पराक्रमका मुकाबला नही किया जा सकता। (इस उदाहरण को अब सम्यक्-ज्ञानीकी अपेक्षासे बताते है) सम्यक्ज्ञानी पुरुष तो शार्दूलसिंह है और अष्टकर्म वैरी है। सम्यक्ज्ञानीरूपी सिंह मरणके समय इन अष्टकर्मरूपी बैरियोको जीतनेके लिए विशेषरूपसे उद्यम करता है।

मृत्युको निकट जानकर सम्यक्ज्ञानी पुरुष सिंहकी तरह साव-धान होता है और कायरेपनेको दूर ही से छोड़ देता है।

सम्यग्दृष्टि कैसी है ?

उसके हृदयमे आत्माका स्वरूप दैदीप्यमान प्रकट रूपसे प्रतिभासता है। यह ज्ञान ज्योतिको लिये अनन्दरससे परिपूर्ण है।

वह अपनेको साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक, चैतन्य धातुका पिड, अनन्त गुणोसे युक्त चैतन्यदेव ही जानता है। उसके अतिशयसे ही वह परद्रव्यके प्रति रचमात्र भी रागी नही होता है।

सम्यग्दृष्टि रागी क्यों नही होता है ?

वह अपने निज स्वरूपको वीतराग ज्ञाता-दृष्टा, पर द्रव्यसे भिन्न, शाश्वत और अविनाशी जानता है और परद्रव्यको क्षणभगुर, अशाश्वत, अपने स्वभावसे भली भाति भिन्न जानता है। इसलिये सम्यक्ज्ञानी मरणसे कैसे डरे और वह ज्ञानी पुरुष मरणके समय इस प्रकारकी भावना व विचार करता है :—

"मुझे ऐसे चिन्ह दिखाई देने लगे हैं जिनसे मालूम होता है कि अब इस शरीरकी आयु थोडी है इसलिये मुझे सावधान होना उचित है इसमे (देर) विलम्ब करना उचित नही है। जैसे योद्धा युद्धकी भेरी सुननेके बाद वैरियो पर आक्रमण करनेमे क्षण मात्र की भी देर नही करता है और उसके वीर रस प्रकट होने लगता है कि "कब वैरियोसे मुकाबला करू और कब उनको जीतू।"

वैसे ही मेरे भी अब कालको जीतनेकी इच्छा है इसलिए हे **कुटुम्ब परिवार वालों ! सुनो ! देखो !** इस पुद्गल पर्यायका चरित्र ! यह देखते देखते उत्पन्न होती है और देखते ही नष्ट हो जाती है सो मै तो पहले ही इसका विनाशीक स्वभाव जानता था। अब इसके नाशका समय आ गया है। इस शरीरकी आयु तुच्छ रह गई है और उसमे भी प्रति समय क्षण-क्षण कम हुआ जाता है किन्तु मै ज्ञाता दृष्टा हुआ इसके (शरीरका) नाशको देख रहा हू। **मै इसका पड़ौसी हूँ न कि कर्ता या स्वामी।** मैं देखता हू कि इस शरीर की आयु कैसे पूर्ण होती है और कैसे इसका (शरीरका) नाश होता है, यही मै तमाशगीरकी तरह देख रहा हू। अनन्त पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर शरीरकी पर्याय रूप परिणमते है, शरीर कोई भिन्न पदार्थ नही है और मेरा स्वरूप भी नहीं है। **मेरा स्वरूप तो एक चेतनस्वभाव**

शाश्वत अविनाशी है उसकी महिमा अद्भुत है सो मैं किससे कहूं ?

देखो ! इस पुद्गल पर्यायका महात्म्य ! अनन्त परमाणुओंका परिणमन इतने दिन एक-सा रहा, यह बडा आश्चर्य है। अब वे ही पुद्गलके विभिन्न परमाणु अन्य-अन्य रूप परिणामन करने लगे है तो इसमे आश्चर्य क्या ? लाखो मनुष्योंके इकट्ठे होकर मिलनेसे **'मेला'** होता है। यह मेला पर्याय शाश्वत रहने लगे तो आश्चर्य समझना चाहिये। इतने दिन तक लाखो मनुष्योका परिणमन एक-सा रहा, ऐसा विचार करने वाला मनुष्य आश्चर्य मानता है। तत्पश्चात् वे लाखो मनुष्य भिन्न-भिन्न दशो दिशाओ मे चले जाते हैं तब 'मेला' का नाश हो जाता है। यह तो इन पुरुषोका अपना-अपना परिणमन ही है जो कि इनका स्वभाव है इसमे आश्चर्य क्या ? इसी प्रकार शरीरका परिणमन नाश रूप होता है यह स्थिर कैसे रहेगा ?

अब इस 'शरीर' पर्यायको रखनेमे कोई समर्थ न होनेका कारण बताते है :—**तीन लोकमें जितने पदार्थ हैं वे सब अपने-अपने स्वभाव रूप परिणमन करते हैं। कोई किसीका कर्त्ता नहीं है, कोई किसीका भोक्ता नहीं,** स्वय ही उत्पन्न होता है स्वय ही नष्ट होता है, स्वय ही मिलता है, स्वय ही बिछुडता है, स्वयं ही गलता है तो मैं इस शरीर का कर्त्ता और भोक्ता कैसे ? और मेरे रखनेसे यह (शरीर) कैसे रहे ? और उसी प्रकार मेरे दूर करनेसे यह दूर कैसे हो जाय ? मेरा इसके प्रति कोई कर्त्तव्य नही है, पहले झूंठा ही अपना कर्त्तव्य मानता था। मै तो अनादिकालसे आकुल व्याकुल होकर महादु ख पारहा था। सो यह बात न्याय युक्त ही है। जिसका किया कुछ नही होता, वह परद्रव्यका कर्त्ता होकर उसे अपने स्वभावके अनुसार परिणमाना चाहे तो वह दुःख पावे ही पावे।

मै तो इस ज्ञायकस्वभाव ही का कर्त्ता और भोक्ता हूं और उसीका वेदन एव अनुभव करता हू। इस शरीरके जानेसे मेरा कुछ भी विगाड नही और इसके रहनेसे कुछ सुधार भी नही है। यह तो प्रत्यक्ष ही काष्ठ या पाषाणकी तरह अचेतन द्रव्य है। काष्ठ, पाषाण और शरीरमे कोई भेद नही है। इस शरीरमे एक जाननेका ही चमत्कार है सो वह तो मेरा स्वभाव है न कि शरीर का। **शरीर तो**

प्रत्यक्ष ही मुर्दा है। मेरे निकल जाने पर इसे जला देते है। मेरे ही मुलाहिजेसे इस शरीरका जगत द्वारा आदर किया जाता है किन्तु जगतको यह खबर नही है कि आत्मा और शरीर भिन्न भिन्न है। इसीसे जगतके लोग भ्रमके कारण ही, इस शरीरसे, अपना जानकर, ममत्व करते है और इसको नष्ट होते देखकर दु.खी होते है और शोक करते है कि "हाय! हाय!! मेरा पुत्र, तू कहा गया? हाय! हाय!! मेरा पति तू कहा गया!; हाय! हाय!! मेरी पुत्री, तू कहा गई? हाय पिता! तू कहा गया? हाय इष्ट भ्रात! तू कहा गया?" इस प्रकार **अज्ञानी पुरुष पर्यायो को नष्ट होते देख कर दु.खी होते हैं** और महादु.ख एव क्लेश को पाते हैं किन्तु **ज्ञानी पुरुष ऐसे विचार करते है**:—"किसका पुत्र? किसकी पुत्री? किसका पति? किसका पिता? किसकी स्त्री? किसकी माता? किसकी हवेली? किसका मन्दिर? किसका माल? किसका आभूषण और किसका वस्त्र? ये सब सामग्री झूंठी, विनाशीक है अतः ये उसी प्रकारसे अस्थिर हैं जैसे स्वप्नमे दिखा हुआ राज्य, इन्द्रजाल द्वारा बनाया हुआ तमाशा, भूतोकी माया या आकाशमे बादलोकी शोभा। ये सब वस्तुये देखनेमे रमणीक लगती है किन्तु इनका स्वभाव विचारे तो कुछ भी नही है। यदि वस्तु होती तो स्थिर रहती और नष्ट क्यों होती? ऐसा जानकर मैं त्रिलोकमे जितनी पुद्गलकी पर्यायें है उन सबसे ममत्त्व छोडता हू और अपने शरीरसे भी ममत्त्व छोडता हू इसीसे इसके नष्ट होनेसे मेरे परिणामोमे अश मात्र भी खेद नही है। ये शरीरादि सामग्री चाहे जैसे परिणमे मेरा कुछ प्रयोजन नही है। चाहे ये कम हो, चाहे भोगो, चाहे नष्ट हो जावो मेरा कुछ भी प्रयोजन नही है।

अहो देखो! मोहका स्वभाव? ये सब सामग्री प्रत्यक्षही परवस्तु है और उसमे भी ये विनाशीक है और इस भव और परभवमे दु.ख-दाई हैं तो भी यह ससारी जीव इन्हे अपना समझकर रखना चाहता है, मैं ऐसा चरित्र देखकर ही ज्ञान-दृष्टि वाला हुआ हू। मेरा केवल 'ज्ञान' ही अपना स्वभाव है और उसे ही मै देखता हू और मृत्युका आगमन देखकर नही डरता हू। काल तो इस शरीरका ग्राहक है

मेरा ग्राहक नही है। जैसे मक्खी, मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तुओ पर ही जाकर बैठती है किंतु अग्नि पर कदाचित् भी नही बैठती है उसी प्रकार काल (मृत्यु) भी दौड़-दौड कर शरीर ही को पकडता है। और मेरेसे तो दूर ही भागता है। **मैं तो अनादि कालसे अविनाशी चैतन्य देव त्रिलोक द्वारा पूज्य पदार्थ हूँ।** उसपर कालका जोर नही चलता। इस प्रकार कौन मरता है? और कौन जन्म लेता है? और कौन मृत्युका भय करे? मुझे तो मृत्यु दीखती नही है। जो मरता है वह तो पहले ही भरा हुआ था और जीता है वह पहले ही जीता था। जो मरता है वह जीता नही और जीता है वह मरता नही है। किन्तु मोह दृष्टिके कारण विपरीत मालूम होता था। अब मेरा मोहकर्म नष्ट हो गया इसलिए जैसा वस्तुका स्वभाव है वैसा ही मुझे दृष्टिगोचर होता है उसमे जन्म, मरण, दु:ख, सुख दिखाई नही पड़ते। अत: मैं अब किस बातका सोच-विचार करूं?

"मैं तो चैतन्यशक्ति वाला शाश्वत बना रहनेवाला हू उसका अवलोकन करते हुए दु:खका अनुभव कैसे हो? मै कैसा हू? मैं ज्ञानानन्द, स्वात्म रससे परिपूर्ण हू और शुद्धपयोगी हुआ ज्ञान रसका आचरण करता हू और ज्ञानाजलि द्वारा उस अमृतका पान करता हू। वह अमृत मेरे स्वभावसे उत्पन्न हुआ है इसलिये वह स्वाधीन है पराधीन नही है इसलिये मुझे उसके आस्वादनमे खेद वही है।

"मै कैसा हूं?"

मै अपने निजस्वभावमें स्थित हूं, अकप हू। मै ज्ञानामृतसे परिपूर्ण हूं। मै दैदोप्यमान ज्ञानज्योति युक्त अपने ही निज स्वभावमें स्थित हू।

देखो! इस अद्‌भुत चैतन्य स्वरूपकी महिमा! उसके ज्ञानस्वभावसे समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव झलकते है किन्तु वह स्वयं ज्ञेयरूप नही परिणमता है और उस झलकनेमे (जाननेमे) विकल्पका अश भी नही है इसलिये उसके निर्विकल्प, अतीन्द्रिय, अनुपम, बाधा रहित और अखड सुख उत्पन्न होता है। ऐसा सुख संसारमे नही है, ससारमे तो दु ख ही है। अज्ञानी जीव इस दु खमें भी सुखका अनुमान करते है किन्तु वह सच्चा सुख नही है।

"मैं कैसा हूं ?" मे ज्ञानादि गुणोसे परिपूर्ण हूं और उन गुणोसे एकमय हुआ अनन्त गुणोकी खान वन गया हू।

"मेरा चैतन्य स्वरूप कैसा है ?" सर्वांगमे चैतन्य ही चैतन्य उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार नमककी डली (टुकडेमें) मे सर्वत्र क्षार रस है या जिसप्रकार शक्कर की डलीमे सर्वत्र अमृतरस व्याप्त हो रहा है। वह शक्करकी डली पूर्णत: अमृतमय पिंड ही है वैसे ही मैं एक ज्ञानामय पिंड वना हू। मेरे सर्वांगमे ज्ञान ही ज्ञान है। जितना-जितना शरीरका आकार है उतना-उतना ही आकारके निमित्त मेरा आकार हे किन्तु अवगाहन शक्ति द्वारा मेरा इतना वडा आकार इतनेसे आकारमे समा जाता है। एक प्रदेशमे असख्यात प्रदेश भिन्न-भिन्न रहते हैं। उनमे सकोच विस्तारकी शक्ति है ऐसा सर्वज्ञ देवने देखा है।

"मेरा निजस्वरूप कैसा है ?" वह अनन्त आत्मीक सुखका भोक्ता है तथा एक सुखकी ही मूर्ति है, वह चैतन्यमय पुरषकार है। जैसे मिट्टी के साचेमे एक शुद्ध चादी की प्रतिमा बनाई जाय वैसे ही इस शरीरके साचेमे आत्माको जानना चाहिए। मिट्टीका साचा समय पाकर गल जाता है, जल जाता है, टूट जाता है किन्तु चादीकी प्रतिमा ज्यो की त्यो वनी रहे वह आवरण रहित होकर सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाय। साचेके नाश होनेसे प्रतिमाका नाश नही होता है वस्तु पहले से ही दो थी इसलिए एकके नाश होनेसे दूसरेका नाश कैसे हो ? यह तो सर्वमान्य नियम है। वैसे ही समय पाकर शरीर नष्ट होता है तो होओ मेरे स्वभावका नाश होता नही, मैं किस बातका सोच करू ?

"चैतन्यरूप कैसा है ?" वह आकाशके समान निर्मल है, आकाश मे किसी प्रकारका विकार नही है। बिल्कुल वह स्वच्छ निर्मल है। यदि कोई आकाशको तलवारसे तोडना, काटना चाहे या अग्निसे जलाना चाहे या पानीसे गलाना चाहे तो वह आकाश कैसे तोडा, काटा जावे या जले या गले ? उसका बिल्कुल नाश नही हो सकता। यदि कोई आकाश को पकडना या तोडना चाहे तो वह पकडा या तोडा नही जा सकता। वैसे ही मैं **आकाश की तरह अमूर्तिक, निर्विकार, पूर्ण निर्मलताका पिण्ड हूं।** मेरा नाश किस प्रकार हो ? किसी भी प्रकार नही हो, यह नियम है। यदि आकाशका नाश हो तो मेरा

भी हो, ऐसा जानना। किन्तु आकाशके और मेरे स्वभावमे इतना विशेष अन्तर है कि आकाश तो जड़ अमूर्तिक पदार्थ है और मैं चैतन्य अमूर्तिक पदार्थ हूं मै चैतन्य हू इसीलिए ऐसा विचार करता हू कि आकाश जड है और मे चैतन्य। मेरे द्वारा जानना प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और आकाश नही जानता है।

"**मैं कैसा हूं।**" मै दर्पणकी तरह स्वच्छ शक्तिका ही पिड हू। **दर्पणकी स्वच्छ शक्तिमें घट-पटादि पदार्थ स्वयमेव ही झलकते है। दर्पणमें स्वच्छ शक्ति व्याप्त रहती है वैसे ही मै स्वच्छ शक्तिमय हूं। मेरी स्वच्छ शक्तिमें (कर्म रहित अवस्थामें) समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव ही झलकते** है ऐसी स्वच्छ शक्ति मेरे स्वभावमे विद्यमान है। मेरे सर्वांगमे एक स्वच्छता भरी हुई है मानो ये ज्ञेय पदार्थ भिन्न है। यह स्वच्छता शक्तिका स्वभाव ही है कि उसमे अन्य पदार्थोका दर्शन होता है।

मैं कैसा हूं ? मै अत्यन्त अतिशय निर्मल, साक्षात् प्रकट ज्ञानका पुंज बना हुआ हू और अनन्त शान्तिरससे परिपूर्ण और एक अभेद निराकुलतासे व्याप्त हू।

"**मेरा चैतन्यस्वरुप कैसा है ?**" वह अपनी अनन्त महिमासे युक्त है, वह किसीकी सहायता नही चाहता है, वह असहाय स्वभावको धारण किए हुए है। वह स्वयंभू है, वह एक अखण्ड ज्ञान मूर्ति, पर द्रव्यसे भिन्न, शाश्वत, अविनाशी और परमदेव है और इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट देव किसे मानै ? यदि त्रिकालमे कोई हो तो मानै ? नही है ?

"**यह ज्ञान स्वरूप कैसा है ?**" वह अपने स्वभावको छोड़कर अन्यरूप नही परिणमता है। वह अपने स्वभावकी मर्यादा उसीप्रकार नही छोडता जिस **प्रकार जलसे परिपूर्ण समुद्र सीमाको छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं करता। समुद्र अपनी लहरोकी सीमामें भ्रमण करता है। उसी प्रकार ज्ञानरूपी समुद्र अपनी शुद्ध परिणतिमय तरंगावलि युक्त अपने सहज स्वभावमें भ्रमण करता है।** ऐसी अद्भुत महिमा युक्त मेरा ज्ञान स्वरूप परमदेव, अनादिकालसे इस शरीरसे भिन्न है।

मेरे और इस शरीरके पड़ौसीके समान संयोग हैं। मेरा स्वभाव अन्य प्रकारका है और इसका स्वभाव अन्य प्रकारका है। मेरा परिणमन और इसका परिणमन भिन्न प्रकारका है। इसलिए यदि यह शरीर अभी गलन रूप परिणमता है तो मैं किस बातका शोक करूं। और किसका दु ख करूं ? मैं तो तमाशगीर पड़ौसीकी तरह इसका गलन देख रहा हूं। मेरे इस शरीरमे राग-द्वेष नही है। राग-द्वेप इस जगतमे निद्य समझे जाते हैं और ये परलोकमे भी दुखदाई है। ये राग-द्वेप-मोह ही से उत्पन्न होते हैं। जिसके मोह नष्ट हो गया उसके राग-द्वेप नष्ट हो गए। मोहके द्वारा ही पर द्रव्यमे अह-कार और ममकार उत्पन्न होते है। यह द्रव्य है सो मै हू ऐसा भाव तो अहकार है और यह द्रव्य मेरा है ऐसा भाव ममकार है। पर सामग्री चाहने पर मिलती नही और छोडी जाती नही तब यह आत्मा खेद खिन्न होता है। यदि सर्व सामग्रीकी दूसरोकी जाने तो इसके (सामग्री) आने और जानेका विकल्प क्यो उत्पन्न हो? मेरे तो मोह पहले ही नष्ट हो गया है और मैंने शरीरादिक सामग्रीको पहले ही पराई जान ली है इसलिये अब इस शरीरके जानेसे किस बातका विकल्प उठे ? कदाचित् नही उठे। मैंने विकल्प उत्पन्न करानेवाले व्यक्तिका (मोहवत्) पहले ही भली भांति नाश कर दिया इसलिए मै निर्विकल्प आनन्दमय निज स्वरूपको बारबार सम्हालता एव याद करता हुआ अपने स्वभावमे स्थित हू।"

कोई सम्यग्दृष्टिको इस प्रकार समझाता है "यह शरीर तो तुम्हारा नही है किंतु इस शरीरके निमित्तसे मनुष्य पर्यायमे शुद्धोपयोग का साधन भली प्रकार होता था उसका उपकार जानकर इसे रखने का उद्यम करना उचित है इसमे हानि नही है" उसको सम्यक्दृष्टि उत्तर देता है—"हे भाई ! तुमने यह बात कही सो तो हम भी जानते है। मनुष्य पर्यायमे शुद्धोपयोगका साधक, ज्ञानाभ्यासका साधन, और ज्ञान वैराग्यकी वृद्धि आदि अनेक गुणोकी प्राप्ति होती है जो कि अन्य पर्यायमे दुर्लभ है, किन्तु अपने सयमादि गुण रहते हुए शरीर रहे तो रहो वह तो ठीक ही है हमारेसे कोई बैर तो है नही और यदि शरीर न रहे तो अपने सयमादि गुण निर्विघ्न रूपसे रखना और शरीरसे

ममत्व छोडना चाहिए। हमें शरीरके लिए संयमादि गुण कदाचित् भी नही खोने है।

जैसे कोई रत्नोंका लोभी पुरुष परदेशसे रत्नद्वीपमें फूसकी झोंपडीमें रत्न ला लाकर इकट्ठा करता है। यदि उस झोपड़ीमे अग्नि लग जावे तो वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करे कि किसी प्रकार इस अग्निका निवारण करना चाहिए रत्नों सहित इस झोपड़ीको बचाना चाहिए। यह झोपडी रहेगी तो इसके सहारे बहुत रत्न और इकट्ठे कर लूंगा। इस प्रकार वह पुरुष अग्निको बुझती हुई जाने तो रत्न रखकर उसे बुझावे और वह यदि यह समझे कि रत्न जानेसे झोपड़ी रहे तो वह कदाचित झोंपड़ी रखनेका उपाय नही करता। उस अवस्थामें वह झोपडीको जलने दे और आप सम्पूर्ण रत्नोको लेकर अपने देश आ जावे। तत्पश्चात् वह एक दो रत्न बेचकर अनेक तरहकी विभूति भोगता है और अनेक प्रकारके स्वर्णके महल, मकानादि व बागादिक बनाता है और राग, रंग, सुगंध आदिसे युक्त क्रीड़ा करता हुआ अत्यन्त सुख भोगता है।

रत्नोके लोभी उक्त पुरुषकी तरह भेदविज्ञानी पुरुष है। वह शरीर के लिए संयमादि गुणोमे अतिचार नही लगाता और ऐसा विचार करता है कि "संयमादि गुण रहेगे तो मैं विदेह क्षेत्रमें देव बनकर जाऊँगा और सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरों और अनेक केवलियो एवं मुनियोके दर्शन करूंगा और अनेक जन्मोके संचित पाप नष्ट करूंगा और मनुष्य पर्यायमें अनेक प्रकारके संयम धारण करूंगा। मैं श्री तीर्थंकर केवली भगवानके चरण कमलोमे क्षायिक सम्यक्त्वकी साधना करूंगा और अनेक प्रकारके मनवाछित प्रश्न कर तत्वोका यथार्थ स्वरूप जानूंगा। राग-द्वेष संसारके कारण है मै उनका शीघ्रता पूर्वक आमूल नाश करूंगा। मै श्री परम दयाल, आनंदमय केवल लक्ष्मी संयुक्त श्री जिनेन्द्र भगवानकी छविका दर्शन रूपी अमृतका निरन्तर लाभ लेऊँगा। तत्पश्चात् मै शुद्धाचरण द्वारा कर्मकलंकको धोनेका प्रयत्न करूंगा। मैं पवित्र होकर श्री तीर्थंकर देवके निकट दीक्षा धारण करूंगा। तत्पश्चात् मै नाना प्रकारके दुर्द्धर तपश्चरण करूंगा और तत्परिणाम स्वरूप मेरा

शुद्धोपयोग अत्यन्त निर्मल होगा और मैं अपने स्वरूपमे लीन होऊँगा। मै उसके बाद क्षपकश्रेणीके सन्मुख होऊंगा और कर्मरूपी शत्रुओंसे युद्ध कर जन्म-जन्मके कर्मोंका उन्मूलन करूंगा और केवलज्ञान प्रगट करूंगा और मुझे एक समय में समस्त लोकालोकके त्रिकालीन चराचर पदार्थ दृष्टिगोचर हो जायेंगे। तत्पश्चात् मेरा यह स्वभाव शाश्वत् रहेगा। मैं ऐसी केवलज्ञान लक्ष्मीका स्वामी हू तब इस शरीरसे कैसे ममत्व करूं ?" ऐसा उत्तर देकर सम्यक्-ज्ञानी पुरुष विचार करता है।

मुझे दोनो ही तरह आनन्द है-शरीर रहेगा तो फिर शुद्धोप-योगकी आराधना करूंगा और शरीर नही रहेगा तो परलोकमे जाकर शुद्धोपयोगकी आराधना करूंगा। इस प्रकार दोनो ही स्थितिमे मेरे शुद्धोपयोगके सेवनमे कोई विघ्न नही दिखता है इसलिए मेरे परिणामोमे संक्लेश क्यो उत्पन्न हो।

"मेरे परिणामोमे शुद्ध" स्वरूपसे अत्यन्त आसक्ति है। उस आसक्तिको छुडानेमे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र आदि कोई भी समर्थ नही हैं। इस आसक्तिको छुड़ानेमे केवल, मोह कर्म ही समर्थ है जिसे मैंने पहले ही जीत लिया। इसलिए जब तीन लोकमे मेरा कोई शत्रु नही रहा है और शत्रुओ बिना त्रिकाल-त्रिलोकमे दु:ख नही है इसलिए मरणसे मुझे भय कैसे हो ? इस प्रकार मैं आज पूर्णतः निर्भय हुआ हू। यह बात अच्छी तरह जाननी चाहिए इसमे कुछ सदेह नही है।"

शुद्धोपयोगी पुरुष इस प्रकार शरीरकी स्थितिसे पूर्णतः परिचित है और ऐसा विचार करने से उसके किसी भी प्रकारकी आकुलता नही होती है। आकुलता ही ससारका बीज है, इस आकुलतासे ही ससारकी स्थिति एव वृद्धि होती है। अनन्त कालसे किए हुए सयमादि गुण आकुलतासे, इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार अग्निमे रुई नष्ट हो जाती है।

"सम्यक्दृष्टि पुरुषको किसी भी प्रकारकी आकुलता नही करनी चाहिये और वस्तुतः एक निज स्वरूपका ही बारम्बार विचार करना चाहिये उसीको देखना चाहिए और उसीके गुणोका सस्मरण,

चिन्तवन निरन्तर करना चाहिए! उसीमें स्थित रहना चाहिए और कदाचित् शुद्ध स्वरूपसे चित्त चलायमान हो तो ऐसा विचार करना चाहिए।" यह ससार अनित्य है। इस संसारमे कुछ भी सार नहीं है। यदि इसमे कुछ सार होता तो तीर्थंकर देव इसे क्यो छोड़ते ?

"इसलिए **निश्चयतः मुझे मेरा स्वरूप ही शरण है और बाह्यतः पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी और रत्नत्रयधर्म** शरण है और मुझे इनके अतिरिक्त स्वप्नमें भी और कोई वस्तु शरणरूप नही, ऐसा मैंने नियम लिया है"।

सम्यग्दृष्टि पुरुष ऐसा नियम कर स्वरूपमे उपयोग लगावे और उसमें उपयोग नही लगे तो अरिहत और सिद्धके स्वरूपका अवलोकन कर और उनके द्रव्य, गुण, पर्यायका विचार करे। ऐसा विचार करते हुए उपयोग निर्मल हो तब फिर उसे (उपयोगको) अपने स्वरूपमे लगावे। अपने स्वरूप जैसा अरिहंतोंका स्वरूप है और अरिहंत सिद्धका स्वरूप जैसा अपना स्वरूप है। अपने (मेरी आत्माके) और अरिहत-सिद्धोके द्रव्यत्व स्वभावमे अन्तर नही है किन्तु उनके पर्याय स्वभावमे अन्तर है ही। मैं द्रव्यत्व स्वभावका ग्राहक हू इसलिये अरिहंतका ध्यान करते हुए आत्माका ध्यान भली प्रकार सघता है और आत्माका ध्यान करते हुए अरिहंतोंका ध्यान भली प्रकार सधता है। अरिहतो और आत्माके स्वरूपमे अन्तर नही है चाहे अरिहंतका ध्यान करो या चाहे आत्माका ध्यान करो दोनों समान हैं।" ऐसा विचार हुआ सम्यग्दृष्टि पुरुष सावधानीपूर्वक स्वभावमे स्थित होता है।

अब कुटुम्ब परिवार से ममत्व कैसे छुड़ावे ? :—

सम्यग्दृष्टि अब क्या विचार करता है और कैसे कुटुम्ब परिवार आदिसे ममत्व छुड़ाता है सो कहते हैं। वह सबसे पहले अपने **माता-पिताको समझाता है .—**

अहो! इस शरीरके माता-पिता! आप यह अच्छी तरह जानते हो कि यह शरीर इतने दिनों तक तुम्हारा था अब तुम्हारा नहीं है। अब इसकी आयु पूरी होनेवाली है सो किसीके रखनेसे यह रखा नही

जा सकता। इसकी इतनी ही स्थिति है सो अब इससे ममत्व छोडो। अब इससे ममत्व करनेसे क्या फायदा? अब इससे प्रीति करना दुःख ही का कारण है। इन्द्रादिक देवोंकी शरीरपर्याय भी विनाशीक है। जब मृत्यु समय आवे तब इन्द्रादिक देव भी दुःखी होकर मुंह ताकते रह जाते हैं और अन्य देवोंके देखते-देखते कालके किंकर उन्हे उठा ले जाते हैं, किसीकी यह शक्ति नहीं है कि कालके किंकरो से उन्हे क्षण मात्र भी रोक ले। इस प्रकार ये कालके किंकर एक-एक करके सबको ले जायेंगे। जो अज्ञान वश होकर कालके अधीन रहेंगे उनकी यही गति होगी। सो तुम मोहके वश होकर इस पराये शरीरसे ममत्व करते हो और इसे रखना चाहते हो, तुम्हे मोहके वश होनेसे ससारका चरित्र झूठा नही लगता है। दूसरेका शरीर रखना तो दूर तुम अपना शरीर तो पहले रखो फिर औरोके शरीरके रखनेका उपाय करना। आपकी यह भ्रम बुद्धि है जो व्यर्थ ही दु.ख का कारण है किन्तु यह प्रत्यक्ष होते हुए भी तुम्हे नही दिख रहा है।

व्यर्थ चर्चा (मोह) छोड़ो :—

संसारमे अबतक कालने किसको छोडा है! और अब किसको छोड़ेगा? हाय! हाय!! देखो, आश्चर्यकी बात कि आप निर्भर होकर बैठे हो, यह आपकी अज्ञानता ही है आपका क्या होनहार है? यह मैं नही जानता हू। इसीलिये आपसे पूछता हू कि आपको अपना और परका कुछ ज्ञान भी है! हम कौन हैं? कहासे आए हैं? यह पर्याय पूर्ण कर कहा जायेंगे? पुत्रादिसे प्रेम करते है सो ये भी कौन है? हमारा पुत्र इतने दिन तक (जन्म लेनेसे पहले) कहा था जो इसके प्रति हमारी ममत्व बुद्धि हुई और हमे इसके वियोगका शोक हुआ? इन सब प्रश्नो पर सावधानीपूर्वक विचार करो और भ्रमरूप मत रहो।

आप अपना कर्त्तव्य विचारने और करनेसे सुखी होओगे। परका कार्य या अकार्य उसके (परके) हाथ है (आधीन है) उसमे आपका कर्त्तव्य कुछ भी नही है। आप व्यर्थ ही खेद खिन्न हो रहे है। आप मोहके वश होकर ससारमे क्यो डूबते हैं? ससारमे नरकादिके दु.ख आप ही को सहने पडेंगे, आपके लिये और कोई उन्हे

नही सहेगा। जैनधर्मका ऐसा उपदेश नही है कि पाप कोई करे और उसका फल भोगे दूसरा। मुझे आपके लिए बहुत दया आती है, आप मेरा यह उपदेश ग्रहण करें। मेरा यह उपदेश आपके लिए सुखदाई है।

मैने तो यथार्थ जिनधर्मका स्वरूप जान लिया है और आप उससे विमुख हो रहे हैं इसी कारण मोह आपको दु ख दे रहा है। **मैने जिनधर्मके प्रतापसे सरलता पूर्वक मोहको जीत लिया है।** इसे जिनधर्मका ही प्रभाव जानो। इसलिए आपको भी इसका स्वरूप विचारना कार्यकारी है। देखो! आप प्रत्यक्ष ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है और शरीरादिक परवस्तु है। अपना स्वरूप अपने स्वभावरूप सहज ही परिणमता है किसीके रखनेसे वह (परिणमन) रुकता नही है किन्तु भोला जीव भ्रम रखता है आप भ्रम बुद्धि छोड़ और स्व-

परका भेदविज्ञान समझे, अपना हित विचार कर कार्य करें। **विलक्षण पुरुषोकी यही रीति है कि वे अपना हित ही चाहते हैं वे निष्प्रयोजन** एक कदम भी नही रखते।

आप मुझसे जितना ज्यादा ममत्व करेंगे उतना ज्यादा दु ख होगा, उससे कार्य कुछ भी बनेगा नही। इस जीवने अनन्त बार अनत पर्यायोमे भिन्न-भिन्न माता-पिता पाए थे वे अब कहा गए ? इस जीवको अनन्तवार स्त्री, पुत्र-पुत्रीका सयोग मिला था वे कहां गए ? इस जीवको पर्याय-पर्यायमे अनेक भाई, कुटुम्ब परिवारादि मिले वे सब अब कहां गए ? यह ससारी जीव पर्यायबुद्धि वाला है। इसे जैसी पर्याय मिलती है वह उसीको अपना स्वरूप मानता है और उसमे तन्मय होकर परिणमने लगता है। वह यह नही जानता है कि जो पर्याय का स्वरूप है वह विनाशीक है और **मेरा स्वरूप नित्य, शाश्वत और अविनाशी है** उसे ऐसा विचार ही नही होता। इसमे उस जीवका दोष नही है यह तो **मोहका महात्म्य है** जो प्रत्यक्ष सच्ची वस्तुको झूठी दिखा देता है। जिसके मोह नष्ट हो गया है ऐसा भेद-विज्ञानी पुरुष इस पर्यायमे अपनत्त्व कैसे माने और वह कैसे इसे सत्य माने ? वह दूसरे द्वारा चलित कैसे हो ? कदाचित नही हो।

अब मुझे यथार्थ ज्ञानभाव हुआ है। मुझे स्व-परका विवेक हो गया है। अब मुझे ठगनेमे कौन समर्थ है ? **मैं अनादिकालसे पर्याय पर्यायमे ठगाता चला आया हूं,** तत्परिणाम स्वरूप मैंने भव-भवमे **जन्म-मरणके दुःख सहे।** इसलिए अब आप अच्छी तरह जान ले कि आपके और हमारे इतने दिनोका ही सयोग सम्बन्ध था जो अब प्रायः पूर्ण हो गया। अब आपको आत्मकार्य करना उचित है न कि मोह करना।

इसलिए अब अपने **शास्वत निज स्वरूपको सम्हालें।** उसमे किसी तरहका खेद नही है। हमारे अपने ही घरमे अमूल्य निधि है उसको सम्हालनेसे जन्म-जन्मके दु ख नष्ट हो जाते है। ससारमे जन्म-मरण का जो दु ख है वह सब **अपना स्वरूप जाने बिना** है इसलिए सबको ज्ञान ही की आराधना करनी चाहिए। ज्ञानस्वभाव अपना निज

स्वरूप है, उसकी प्राप्तिसे यह जीव महा सुखी होता है। आप प्रत्यक्ष देखने-जाननेवाले ज्ञायक पुरुष शरीरसे भिन्न ऐसा अपना स्वभाव उसे छोड़कर और किससे प्रीतिकी जावे? **मेरी स्थिति तो इस सोलहवें स्वर्गके कल्पवासी देवकी तरह है** जो तमाशा हेतु मध्यलोकमे आवे किसी गरीब आदमीके शरीरमें प्रविष्ट हो जावे और उसकी सी क्रिया करने लगे। वह कभी तो लकड़ीका गठ्ठर सिर पर रखकर बाजारमे बेचने जाता है और कभी मिट्टीका तसला सिर पर रख स्त्रियोसे रोटी मागने लगता है, कभी पुत्रादिकको खिलाने लगता है, कभी धान काटने जाता है, कभी राजादि बड़े अधिकारियोके पास जाकर याचना करता है कि महाराजा! मै आजीविकाके लिए बहुत ही दुखी हूं मेरी प्रतिपालना करें, कभी दो पैसे मजदूरीके लेकर दाती कमरमे लगाकर काम करनेके लिए जाता है, कभी रुपये दो रुपयेकी वस्तु खोकर रोता है हाय! अब मै क्या करूंगा? मेरा धन चोर ले गए! मैंने धीरे-धीरे धन इकठ्ठा किया और उसे भी चोर ले गए, अब मैं अपना समय कैसे बिताऊगा? कभी नगरमे भगदड हो तो वह पुरुप एक लड़केको अपने काधे पर बैठाता है और एक लड़केकी अंगुली पकड लेता है और स्त्री तथा पुत्रीको अपने आगे कर, सूप, चालणी, मटकी, झाडू, आदि सामानको एक टोकरीमे भरकर अपने सिर पर रखकर, एक दो गूदडोकी गठरी बाधकर उस टोकरी पर रख आधी रातके समय नगरसे बाहर निकलता है! उसे मार्गमे कोई राहगीर मिलता है, वह (राहगीर) उस पुरुषको पूछता है : हे भाई! आप कहा जाते है? तब वह उत्तर देता है कि इस नगरमे शत्रुओकी सेना आई है इसलिए मै अपना धन लेकर भाग रहा हू और दूसरे नगरमे जाकर अपना जीवन यापन करूगा इत्यादि नाना प्रकारका चरित्र करता हुआ **वह कल्पवासी देव उस गरीबके शरीरमें रहते हुए भी अपने सोलहवें स्वर्गकी विभूतिको एक क्षणमात्र भी नहीं भूलता है,** वह अपनी विभूतिका अवलोकन करता हुआ सुखी हो रहा है। उसने गरीब पुरुषके वेपमे जो नाना प्रकारकी क्रियाये की है—वह उनमे थोडासा भी अहकार-ममकार नही करता वह सोलहवे स्वर्गकी देवागना आदि विभूति और देव स्वरूपमे ही अहकार-ममकार करता है।

उस देवकी तरह मै **सिद्ध समान आत्मा द्रव्य, मै पर्यायमे** नाना **प्रकारकी चेष्टा करता हुआ भी अपनी मोक्ष लक्ष्मीको** नही भूलता हू तब मैं लोकमे किसका भय करू ?'

अब स्त्री से ममत्व छुड़ाते हैं .—

तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि स्त्रीसे ममत्व छुडाता है "अहो ! इस शरीरसे ममत्व छोड ! तेरे और इस शरीरके इतने दिनोका ही सयोग सम्बन्ध था सो अब पूर्ण हो गया । अब इस शरीरसे तेरा कुछ भी स्वार्थ नही सधेगा इसलिए तू अब मेरेसे मोह छोड और बिना प्रयोजन खेद मत कर । यदि तेरा रखा हुआ यह शरीर रहे तो रख, मैं तो तुझे रोकता नहीं और यदि तेरा रखा यह शरीर न रहे तो मैं क्या करू ? यदि तू अच्छी तरह विचार करे तो तुझे ज्ञात होगा कि तू भी आत्मा है और मैं भी आत्मा हूं । स्त्री-पुरुषकी पर्याय तो पुद्गलका रूप है अत. पौद्गलिकसे कैसी प्रीति ? यह जड और आत्मा चैतन्य. ऊट-बेलका सा इन दोनोका संयोग कैसे बने ? तेरी पर्याय है उसे भी चचल ही जान । तू अपने हितका विचार क्यो नही करती ? हे स्त्री ! मैने इतने दिन तक तुम्हारे साथ सहवास किया उससे क्या सिद्धि हुई और इन भोगोसे क्या सिद्धि होनी है । **व्यर्थ ही भोगोंसे हम आत्माको संसारचक्रमें घुमाते है।** भोग करते समय हम मोह वश होकर यह नही जानते कि मृत्यु आवेगी और तत्पश्चात् तीन लोककी सपदा भी मिथ्या हो जाती है । इसलिए तुझे हमारी पर्यायके लिए खेद खिन्न होना उचित नही है यदि तू हमारी प्रिय स्त्री है तो हमे **धर्मका उपदेश दे** यही तेरा **वैयावृत्य** करना है । अब हमारी देह नही रहेगी, आयु तुच्छ रह गई है इसलिए तू मोह कर आत्माको ससारमे क्यो डुबोती है ! यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है । यदि तू मतलब ही के लिए हमारी साथिन है तो तू तेरी जाने । हम तुम्हारे डिगानेसे डिगेगे नही । हमने तुझे दया कर उपदेश दिया है । तू मानना चाहे तो मान, नही माने तो तेरा जैसा होनहार होगा वैसा होगा । हमारा अब तुमसे कुछ भी मतलब नही है इसलिए अब हमसे ममत्व मत कर । हे प्रिये ! **परिणामोको शांत रख, आकुल मत हो । यह आकुलता ही संसारका बीज है ।**

इस प्रकार स्त्रीको समझाकर सम्यग्दृष्टि उसे विदा करता है

तत्पश्चात् वह कुटुम्ब परिवारके अन्य व्यक्तियोंको बुलाकर उन्हे सबोधित करता है ।

अब ग्रहस्थ कुटुम्ब परिवार को बुलाकर समझाता है—

" अहो कुटुम्बीगण ! अब इस शरीरकी आयु तुच्छ रही है । अब हमारा परलोक नजदीक है इसलिए हम आपको कहते हैं कि आप हमसे किसी बातका राग न करें । आपके और हमारे चार दिन का सयोग था कोई तल्लीनता तो थी नही जैसे सराय मे अलग-अलग स्थानोके राही दो रात ठहरें और फिर बिछुडते समय वे दु खी हो ! इसमे कौनसा सयानापन है । इसी प्रकार हमे बिछुडते समय दु ख नही है किन्तु आप सबसे हमारा क्षमाभाव है । आप सब आनन्दमयी रहे । यदि आपकी आयु बाकी है तो आप **धर्म सहित व राग रहित होकर रहो ।** अनुक्रमसे आप सबकी हमारी सी स्थिति होनी है । इस ससारका ऐसा चरित्र जानकर ऐसा बुधजन कौन है जो इससे प्रीति करे ! "

कुटुम्ब-परिवारवालोको इस प्रकार समझाकर सम्यग्दृष्टि उन्हे सीख देता है । तत्पश्चात् वह अपने पुत्रोको बुलाकर समझाता है—

अब पुत्र को बुलाकर समझाता है —

अहो ! पुत्रो ! आप सब बुद्धिमान है, हमसे किसी प्रकारका मोह नही करे । जिनेश्वरदेवके धर्मका भली प्रकार पालन करे । आपको धर्म ही सुखकारी होगा । कोई व्यक्ति माता-पिताको सुख-कारी मानता है यह मोहका ही माहात्म्य है । वस्तुतः कोई किसीका कर्त्ता नही । कोई किसीका भोक्ता नही है सब पदार्थ अपने अपने स्वभावके कर्त्ता-भोक्ता है इसलिए अब हम आपको पुन: समझाते है कि यदि आप व्यवहारतः हमारी आज्ञा मानते है तो हम जैसे कहे वैसे करे । " सच्चे देव, धर्म, गुरुकी दृढ़ प्रतीति करो साधर्मियोसे मित्रता करो, पराश्रयकी श्रद्धा छोडो, दान, शील तप, सयमसे अनुराग करो, **स्व-पर भेदविज्ञानका उपाय करो** और ससारी पुरुषोके ससर्गको छोडो । यह जीव ससारमे सरागी जीवोकी सगतिसे अनादि-कालसे ही दु:ख पाता है इसलिए उनकी सगति अवश्य छोड़नी चाहिए । **धर्मात्मा पुरुषोकी संगति इस लोक और परलोक दोनोमें**

महासुखदाई है। इस लोकमे तो निराकुलतारूपी सुखकी और यशकी प्राप्ति होती है और परलोकमे वह स्वर्गादिकका सुख पाकर मोक्षमे शिवरमणीका भर्त्ता होता है और वहाँ पूर्ण निराकुल, अतीन्द्रिय, अनुपम बाधारहित, शाश्वत अविनाशी सुख भोगता है इसलिए हे पुत्रो ! यदि तुम्हे हमारे वचनोंकी सत्यता प्रतीत हो तो हमारे वचन अगीकार करो, इसमे तुम्हारा हित होता दिखे तो करो और यदि हमारे वचन झूटे लगे और इनसे तुम्हारा अहित होता दिखे तो हमारे वचन अङ्गीकार मत करो। हमारा तुमसे कोई प्रयोजन नही किन्तु तुम्हे दया बुद्धिसे ही यह उपदेश दिया है इसलिये इसे मानो तो ठीक और न मानो तुम अपनी जानो।"

तत्पश्चात् सम्यक्‌दृष्टि पुरुष अपनी आयु थोड़ी जानकर दान, पुण्य, जो कुछ उसे करना होता है, स्वयं करता है।

तदनन्तर उसे जिन पुरुषोंसे परामर्श करना होता है उनसे कर वह नि शल्य हो जाता है और सासारिक ,कार्योंसे सम्बन्धित जो स्त्री-पुरुष हैं उनको विदा कर देता है और धार्मिक कार्योंसे सम्बन्धित पुरुषोको अपने पास बुलाता है और जब वह अपनी आयुका अन्त अति निकट समझता है तब यावज्जीवन सर्वप्रकारके परिग्रह और चारो प्रकारके आहार का त्याग करता है और समस्त परिग्रहका भार पुत्रोंको सौपकर स्वयं विशेषरूपसे निःशल्य-वीतरागी हो जाता है। अपनी आयुके अन्तके सम्बन्ध मे सन्देह होने पर दो-चार घड़ी, प्रहर, दिन आदिकी मर्यादा पूर्वक त्याग करता है।

तत्पश्चात् वह चारपाईसे उतरकर जमीन पर सिंह की तरह निर्भय होकर बैठता है जैसे शत्रुओको जीतनेके लिए सुभट उद्यमी होकर रण-भूमिमे प्रविष्ट होता है। इस स्थितिमे सम्यग्दृष्टिके अंश-मात्र आकुलता भी उत्पन्न नहीं होती।

उस शुद्धोपयोगी सम्यक्‌दृष्टि पुरुषके मोक्षलक्ष्मीका पाणिग्रहण करनेकी तीव्र इच्छा रहती है कि अभी मोक्षमे जाऊ। उसके हृदय पर मोक्षलक्ष्मीका आकार अङ्कित रहता है और इस कारण वह किंचित् भी राग परिणति नही होने देता है और इस प्रकार विचार करता है कि "राग परिणतिने मेरे स्वभावमें थोड़ासा भी प्रवेश किया

तो मुझे वरण करनेको उद्यत मोक्षलक्ष्मी लौट जायेगी, इसलिए मैं राग परिणतिको को दूर ही से छोड़ता हूं।" वह ऐसा विचार करता हुआ अपना काल पूर्ण करता है उसके परिणामोमे निराकुल आनंद-रस रहता है, वह शांतिरससे अत्यन्त तृप्त रहता है। उसके आत्मिक सुख के अतिरिक्त किसी वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा नही है। उसे केवल अतिन्द्रिय सुखकी वाछा है और उसी को भोगना चाहता है इस प्रकार वह स्वाधीन एव सुखी हो रहा है।

उसे यद्यपि सार्धमियोका सयोग सुलभ है तो भी उसे उनका सयोग पराधीन होनेसे आकुलतादायी ही लगता है और वह यह जानता है कि निश्चयत· इनका सयोग सुखका कारण नही है। सुखका का कारण एक मेरा शुद्धोपयोग ही है जो मेरे पास ही है अतः मेरा सुख मेरे अधीन है।

सम्यग्दृष्टि इसप्रकार आनन्दमयी हुआ शान्त परिणामोसे युक्त समाधिमरण करता है।

❀ मेरा आतम है परमातम ❀

मनुज देव राजा के सुन्दर, भवन वने हो भारी।
चाहे शयनासन वाहन रथ, आदि वस्तुयें सारी॥
मात पिता दारा सुत वाधव, सेवक आदिक भैया।
नाशवत जग की सामग्री, काहे तू भरमैया॥
ये इन्द्रिय के रूप अथिर है, विनाशीक वल यौवन।
तन निरोगता, तेज पुण्य सौंदर्य सभी हे! चेतन॥
इन्द्र धनुषसम विलय जाय है पल मे वार न लागै।
सुपने की सी माया है रे, चित्त न यामैं पागै॥
देव असुर नर राजाओके, वैभव से है न्यारा।
जाका निश्चल रूप अनुपम ऐसा, आत्म हमारा॥
ध्याओ निश्चय नयसौं ऐसा, शुद्ध बुद्ध अविकारी।
"मेरा आतम है परमातम", ज्ञानदर्श धन धारी॥

७ समाधि सार

पं० दीपचन्द जी

'समाधि तौ प्रथम ध्यान भये होय है, सो ध्यान एकाग्रचिन्ता-निरोध भये होय है। सो चिन्तानिरोध राग-द्वेष के मिटे होय है। सो राग द्वेष इष्ट अनिष्ट समागम मिटे, मिटै हैं। तातै जीव जो समाधिवांछक है, ते इष्ट अनिष्ट का समागम मेटि, राग-द्वेष त्यागि, (अन्य) चिंता मेटि, ध्यानमैं मन धरि, चिद् स्वरूप मे समाधि लगाय, निजानन्द भेंटौ। स्वरूप मैं वीतरागतातै ज्ञानभाव होय तब समाधि उपजै (और) वह अपने स्वरूपमै मन लीन करै। द्रव्य-गुण पर्यायमें परिणाम लीन (होय), स्वसमयसमाधि ऐसी होय है॥

तप इन्द्रादि सम्पदाके भोग रोगवत् भासै। द्रव्य, द्रवणतै नाम पाईये है। गुणकौ द्रवै (प्राप्त होवे) सो द्रव्यत्वलक्षण परिणाममैं, तातै गुण (समुदायरूप) द्रव्यमैं परिणाम लीन होय। गुण द्रव्यमै द्रव्यत्व लक्षण है। तौ परिणामसौ द्रव्यगुण मिलि गये तातै द्रव्यत्व की एकदेशता साधक कै ऐसी भई जो परीषह अनेक की वेदना न वेदै है रसास्वाद मे लीन आनन्दरस तृप्त भया। जब मन परमेश्वरमें मिलं लीन होय न निकसै परमानन्द वेदै तब स्वरूपकी धारणा होय।

निरन्तर जहां अचलज्योति का विलास अनुभवप्रकाशमे भया, उपयोग मे परिणाम लगे। ज्यौं ज्यौ दर्शनचेतना स्वरूप अनूप अखण्डित अनन्तगुण मण्डितकौ जानि रसास्वाद ले, त्यौ त्यौ पर विस्मरण होय, पर उपाधि की लीनता मिटै। समाधि प्रगटै। तब उत्कृष्ट सम्यक्प्रकार स्वरूप वेत्ता होय। ज्ञान ज्ञानकौ जानै। ज्ञान-दर्शनकौ जानै, ज्ञान सब गुणकौ जानै। द्रव्यकौ जानै, पर्यायकौ जानै, एकदेश भेद साधक ज्ञान जानै। ज्ञान करि वस्तुको जानते परम पद पावै। ताका-सा (उस जैसा) सुख परोक्ष ज्ञान ही मे है। प्रत्यक्ष प्रतीतिमै वेदै है। तहा आनन्द ऐसा होय है।

सप्रज्ञातसमाधि मैं दुःखादि वेदना प्रत्यक्ष भये हू न वेदै। विधान स्वरूप वेदनेका है। मन विकार जेते अशर्कार विलय गया तेती

समाधिभई (और) सम्यग्ज्ञान करि जेता भेद वस्तु का गुणन करि जान्या तेता सुख-आनन्द बढ्या । विश्राम भये, स्वरूप थिरता पाय, समाधि लागी, ज्ञानधारा निरावरण होय, ज्यौं ज्यौं निजतत्व जानै, त्यौं त्यौं विशुद्धता केवलकरि ज्ञान परिणति परम पुरुषसौं मिल, निज महिमा प्रगट करै । तहां अपूर्व आनन्दभावका लखाव होय तब समाधि स्वरूप की कहिये ॥

तहा अनादि अज्ञानका भ्रम भाव (जो) आकुलता मूल था सो मिट्या, अनात्म अभ्यास के अभाव तै सहज पद्का भाव भावत, भव वासना विलावत, दरसावत परम पदका स्थान गुणका निधान, अमलान भगवान सकल पदार्थका जानन रूप ज्ञानकी प्रतीति प्रमाण भाव करि, नवनिधान आदि जगत का विधान झूठा भास्या । तब प्रकाश्या आत्मभाव, लखाव आपके तै कीना; तब चेतनभाव लीना, शुद्ध धारणा धरी, निज भावना करी, शिवपदकौ अनुसरी, आनन्द रससौ भरी, हरी भवबाधा अबाधा, जहा सदा मुदा (हर्ष) सेती एती शक्ति बढाई, शिवसुखदाई, चिदानन्द अधिकाई (वह) ग्रंथ ग्रन्थनमै गाई, सो समाधितै पाईये है ।

यह स्वरूपानन्द पद, भेदी समाधितै होय है । वस्तु का स्वरूप गुणके जानै तै जानै । गुण का पुंज वस्तुमय है । वस्तु अभेद है । भेद गुण-गुणी का गुण करि भया । तातै गुणका भेद, वस्तु अभेद जनावनै कौ कारण है ॥

वितर्क कहिये—द्रव्यका शब्द ताका अर्थ भावना-भाव-श्रुत श्रुतमे स्वरूप अनुभवकरण कह्या । परमातम उपादेय कह्या । ताही रूपभाव सो भावश्रुतरस पीव । अमरपद समाधि तै है । विचार अनादि भय भावन का नाश, चिदानन्द द्रव्य गुण-पर्यायका विचार न्यारा जानि, दर्शन-ज्ञान वानिगीकौ पिछानि, चेतनमै मग्न होता, ज्यौ ज्यौ उपयोग स्वरूप लक्षणकौ लक्ष्य रसस्वाद पीवै, सो स्वपर भेद विचारने (से) सारपद पाय समाधि लागी । अपार महिमा जाकी परमपद सो पाया । अनादि परइन्द्रिय जनित आनन्द मानै था, सो मिट्या ज्ञानानंद मै समाधि भई, वस्तु वेदो, आनन्द भया गुण वेदि

आनन्द भया। परिणति विश्राम स्वरूप में लिया, तब आनन्द भया। एकोदेश-स्वरूपानन्द ऐसा है ।।

जहा इन्द्रियविकार वल विलय भया है, मन विकार न होय, सुख अनाकुल रस रूप समाधि जागी है, "अह ब्रह्म" "अह अस्मि" ब्रह्म प्रतीति भावनमें थिरता मैं समाधि भई; तहा आनन्द भया। सो केतेक काल लगु 'अह' ऐसा भाव रहे, फिर समाधिमैं "अहपणा" तो छूटे, 'अस्मि' कहिये है, हू ऐसा भाव रहै तहा दर्शन ज्ञान मय हौ, मैं समाधि लागैं हौ, ऐसा हू रहणा (भी) विकार है।

इसके मिटें विशेष ऐसा होय जो द्रव्यश्रुत वितर्कपणा मिटी। एकत्व, स्वरूप मे भया, एकता का रस रूप मन लीन भया, समाधि लागी, तहा विचार भेद मिट्या, अनुभव वीतराग रूप स्वसवेदन भाव भया। एकत्व चेतना मैं मन लगा, लीन भया तहा इन्द्रियजनित आनन्द के अभाव तैं स्वभाव लखावका रसास्वाद करि आनन्द बढ्या तहा फिरि "अस्मि भाव" ज्ञान ज्योतिमैं था सो भी थक्या ।।

आगै विवेकका स्वरूप, स्वरूप परिणति शुद्धी का ऐसा जहां परमात्माका विलास नजीक भया, **तहां अनंत गुणका रस (भया) फिरि परिणामवेदि समाधि लागी।** निर्विकार धर्मका विलास प्रकाश भया। प्रतीति रागादि रहित भावनमै, मनोविकार बहोत गया। तब आगै अश प्रज्ञात भया। तब परके जानने मे विस्मरणभाव आया। तब केवलज्ञान अतिशीघ्रकालमैं पावै। परमात्मा होय लोकालोक लखावै। ऐसी अनुभवकी महिमा मन के विकार मिटै होय है। सो मन विकार मोह के अभाव भयें मिटै है। सकल जीवकौं मोह महा-रिपु है। अनादि ससारी जीवकौ नचावै है। अरु चउरासी मैं ससारी जीव हर्ष मानि-मानि भवसमुद्रमै गिरै है-परै हैं (तो भी) आपकौ धन्य मानै है। देखो घिठौही भूलितैं कैसी पकरी है। नैक निजनिधि अनन्त सुखदायककौ न सभारै है। यातैं इन ही जीवनकौ श्री गुरुपदेशामृत पान करने जोग्य है। इसतै मोह मिटै (तथा) अनु-भव प्रगटै सो कहिये—

प्रथम, श्री जिनेन्द्र देव आज्ञा प्रतीति करै, तहा पाछै **भगवत् प्रणीत तत्व उपादेय विचारै** (तब) **चेतन प्रकाश अनन्त सुखधाम,**

अमल अभिराम, आतमाराम, पररहित उपादेय है पर हेय है। स्व-पर-भेदज्ञान का निरन्तर अभ्यास तैं शुद्धचैतन्य तत्वकी लब्धि होय, तिहितै राग-द्वेष-मोह मिटै। कर्म सवर होय तब कर्म मिटवे तै निज ज्ञान तै निर्जरा होय। तब सकल कर्मक्षय निज परिणाम हुआ भाव-मोक्ष होय। तब द्रव्य मोक्ष होय ही होय। तातैं भेदज्ञान अभ्यासतें परमपद सिद्ध (होय) सो भेद-ज्ञान उपजाने का विचार कहिये है।

ज्ञान भाव-जाननरूप-उपयोग विभावभाव अपनें जानै है। सो विभाव के जानने की शक्ति आत्मा आपणी जानै। जानि रूप परिण-मन करै। ज्ञानरस पीवै विभावनकौ न्यारे न्यारे जानै। विभाव सुधाधारा, ज्ञानरूप परिणाम सुधाधारा न्यारी [न्यारी] धारा दोन्यौ जानै। पुद्गल-अश आठकर्म शरीर भिन्न है जड है। चेतन उपयोग-मय है। इनमैं विवेचन करै। जुदा प्रतीति भाव करै, प्रत्यक्ष (शरीर) जड रहै। सदा जामैं चेतना प्रवेश न होय। चेतना जड न होय, यह प्रत्यक्ष सब ग्रन्थ कहै सब जन कहैं। जिनवाणी विशेष करि कहै। अपने जान हू मै आवै। शरीर जड अनते त्यागै। **दर्शन-ज्ञान सदा साथ रहवो किया, सो अब भी देखनें जाननें वाला यह मेरा उपयोग सो ही मेरा स्वरूप** है। तब उपयोगी अनुपयोगी विचारत, प्रतीति जड चेतन की आवै। विभाव कर्म-चेतना है। कर्म-राग द्वेष मोह-भाव कर्म तिस मे चेतना परिणमै है। तब चिद्विकार होय। इस चिद्विकारकौ आप करि आपा मलिन किया है। केवलज्ञान-प्रकाश आत्माका विलास है। तिसकौ न सभारै है। मोहवशतै ग्रथकौ सुणै है अरु जानै है। शरीर विनसैगा, परिवार, धन, तिया, पुत्र, ये भी न रहैगे, परि इनसौ हित करै। नरकबध परै। अनन्त दु.ख कारणकौ सुख समझै ॥

ऐसी अज्ञानता मोह वश करि है। तातैं ज्ञान प्रकाश मेरा उपयोग सदा मेरा स्वरूप है। सो सदा स्वभाव मेरा मै हौ। कबहू जिसका वियोग न होय, अनन्त महिमा भडार, अविकार, सारसरूप दुर्निवार मोह सौ रहित होय। अनुपम आनन्दघन की भावना करणी। अश-अश परका, जड वा पर जीव, सब स्वरूपसौ भिन्न जानि, **दर्शन-ज्ञान चारित्रादि अनतगुणमय हमारा स्वरूप** है। प्रतीतिमै ऐसे भाव करत पर न्यारा भासै, विभावरूप उफदमल-औपाधिकभाव आपके भरम तै

भया, तिसतैं भरम मेटि, विभाव न होय, स्वभाव प्रगटै, अना‍ि
अज्ञानतैं गुप्त ज्ञान भया।

शुद्ध अशुद्ध दोऊ दशा मै ज्ञान शासतीं शक्ति कौ लिये चिद्विका
भाव-क्रोधादि रूप भये-होय सो ही भाव मेटि, निर्विकार सहज भाव
आप आपमैं आचरण विश्राम थिरता परिणाम करि करै। जो बाह्य
परिणाम उठै है सो अशुद्ध है, सो परिणाम का करणहार अशुद्ध होय
है। वाह्य विकारमैं न आवै। चेतना नाव उपयोगरूप अपनी इस
ज्ञायक शक्ति कौ नीकै जानै तो निज रूप ठावा होय। **प्रतीति चेतन
उपयोग की करत-करत परसौं स्वामित्व मेटि मेटि, स्वरूप रसास्वाद
चढता-चढ़ता जाय। तव शुद्ध उपयोग स्वरस-पूण विस्तार पावै। तब
कृत-कृत्य निवसै।** यह श्रीजिनेन्द्र शासनमे स्याद्वाद विद्या के बलतै
निज ज्ञान कलाकौ पाय अनाकुल पद अपना करै। **इहां सब कहनै का
तात्पर्य यह है। जो पर कौ अपनायति (अपनापन) सर्वथा मेटि स्वरस-
रसास्वादरूप शुद्ध उपयोग करिये।** राग द्वेष विषम-व्याधि है सो
मेटि-मेटि परमपद अमर होय, अतीन्द्रिय अखण्ड अतुल अनाकुल सुख
आप पदमैं स्वसवेदन प्रत्यक्षकरि वेदिये। सकल सत-मुनिजन-पच-
परमगुरू स्वरूप अनुभवकौ करै हैं। तातै महान् जन जा पथको
पकरि पार भये सो ही अविनाशीपुर का पथ ज्ञानी जनकौ पकरणा
अनन्त कल्याण का मूल है।

परिणाम चेतना-द्रव्य चेतनामैं लीन भये अचलपद ज्ञानज्योति
का उद्योत होय है। एकोदेश उपयोग शुद्ध करि स्वरूपशक्ति कौ
ज्ञान द्वार मै जानन लक्षण करि जानै। लक्ष्य-लक्षणप्रकाश आपका
आपमे भासै। तब सहजधारावाही निजशक्ति व्यक्त करता-करता
सपूर्ण व्यक्तता करै। तब यथावत् जैसा तत्व है तैसा प्रत्यक्ष लखावै।
देखो कोई भगल विद्या करि काकरेनकौ हरि हीरा मोती दिखावै
है। बुहारीके तृण कौ सर्प करि दिखावै है। तहा वस्तु लोकनकौ
साचीदरसै। परि साची नाही।। तैसै पर मै निज मानि आपकौ सुख
कल्पै सो सर्वथा झूठ है। सुख का प्रकाश परम-अखण्ड-चेतना के
विलाससै है। शुद्ध स्वरूप आप परमे खोजना करै तब न पावै।
(स्व-परको यथावत जाने तव पावै) बारबार विस्तार कहिणा इस

वास्ते आवै है :—अनादि का अविद्या मैं पगि रह्या है, मोह की अत्यन्त निबिड़ गाटि परी है, तातैं स्वपदकी भूलि भई है। भेदज्ञान अमृतरस पीवै, तब अनंतगुण धाम अभिराम आत्मारामकी अनन्त शक्तिकी अनन्त महिमा प्रगट करै यह सब कथन का मूल है। पर-परिणाम दु.ख धाम जानि, मानि परकी मेटि, स्वरस सेवन करणां अरु निदान पर (लक्ष्य पर) दिष्टि कीजै।

विनश्वर पर दु:ख का अनादि सेवन किया। तातै जन्मादि दु:ख भये। अब नरभवमैं सतसगतैं तत्वविचार का कारण मिल्या, तौ फेरि कहा अनादि भव-संतानकी बाधा के करणहार परभाव सेइये? यह जिसतै अखडित अनाकुल अविनाशी अनुपम अतुल आनन्द होय, सो भाव करिये। जो भाव मनोहर जानि मोह करै है। अपने आत्माकौ झूंठी अविद्या के विनोद करि ठगै है। सफल जगत चारित्र झूंठ बत्या ही है, सो मोहतै न जानै है। जो स्वरस सेवन (करे) तौ परप्रीति-रीति रंच हूं न धारै (और) अनन्त महिमा भाण्डारकौ ज्ञान चेतनामै आपा अनुभवै। जो-जो उपयोग उठै सो मैं हों (हूं) ऐसा निश्चय भावनमै करै, वो तिरै ही तिरै। अनादि का विचार करै। अनादि का परमैं आपा जानि दु.ख सह्या। अब श्री गुरुनैं ऐसा उप-देश कह्या है। तिसकौ सत्य करि मानते ही श्रद्धातै मुक्तिका नाथ होय है। तातै धन्य सद्गुरु! जिनौंने भव-गर्भ में सो काढने का उपाय दिखाया। तातै श्री गुरुका-सा उपकारी कोई नाही, ऐसै जानि श्रीगुरुके वचन प्रतीतितै पार होना।

जेता अनुराग विषपन्नमें करै है, मित्र पुत्र भार्या धन शरीरमै करै हैं, तेता रुचि श्रद्धा प्रतीतिभाव स्वरूपमै, तथा पंचपरम गुरुमै करै, तौ मुक्ति अति सुगम होय। पच परम गुरु राग भी ऐसा है, जैसा सध्याका राग सूर्य अस्तता का कारण है, प्रभाव की सध्या की ललाई सूर्य उदयकौ करै है। तातैं विविध परम गुरु बिना, शरीरादि राग केवलज्ञान की अस्तता कौ कारण है (और) पच परमगुरु का राग, केवलज्ञान उदयकौ कारण है। तातै विशेप करि परम धर्मका अनुभव राग, परमसुखदायक है। अर्थ (लक्ष्मी) अनन्त अनर्थ कौ करै; सो किसही अर्थि नही; अर्थ सो ही, जो परमार्थ साधै। तिस

करि काम सौं किस काम ? निज कामना सै काम सो ही सुकाम सुधारै। मिथ्यारूपधर्म अनन्त ससार करै, सो धर्म कहा ? सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय निज धर्म, व्यवहार रत्नत्रय रूप कारण। मोक्ष सो ही फेरि कर्म न बन्धै, (इसलिये) ऐसा विचारणा-जैसैं दीपक मन्दिर मै धरै तैं प्रकाश होय तौ सब सूझै, तैसैं ज्ञानी को ज्ञान प्रकाशसौ सब सूझै ॥

कैसें ? ज्ञान करि विचारै, शरीरमै चेतन है दिष्टि (दृष्टि) द्वार करि देखै है। ज्ञान द्वार करि जानै है। अपने उपयोग करि आप चेतन हौ। आप ऐसैं जाने, देह मैं देह कौ देखनेहारा मेरा स्वरूप चेतन रूप है। तौ जड़कौ चलावै हलावै है, चेतन प्रेरक है। अचेतन अनुपयोगी जड न देखै न जानै, यह तौ प्रसिद्ध है। जो शरीर देखै-जानै तौ, (जब) गत्यन्तर जीव होय, तब शरीर क्यो न देखै ? तातैं यह देखने जाननें करि आपा चेतन रूप, प्रत्यक्ष ठावा (निश्चय) करि स्वरूपकौं चेतन मानि, अचेतन का अभिमान तजना मोक्ष का मूल है।

शरीर वासना का त्यागी आपा स्वरूप अवगाढ़ चेतन स्वरूप करि भावना। ऊजड़ कौ बस्ती मानै है, चेतन वस्तीकौ उजड़ मानै है। ऐसी भूलि मेटि, तेरी चेतना वस्ती शाश्वत है। जहां वसै तौ अपना अनन्त गुण निधान न मुसावै (लुटावे)। निज धन का धणी परम साह होय। तब अनन्त सुख-व्यापार मै अविनाशी नफा होय। अनादि परमैं आपा मान्या, परकौ ग्रहण करते-करते पर वस्तु का चोर भया, जग माहि दुःख दण्ड भोगवै है। विवेक राजा का अमल (शासन) होय (और) परग्रहण रूप चोरी मिटै, तब आप साह पद धरि सुखी होय। तब निज परिणति रमणी करि अपना निज घर थिर करै।

अनादि अथिर पदका प्रवेश था, ताकौं त्यागि अखण्ड अविनाशी पदकौ पहुंचै। यह साक्षात् शिव मार्ग स्वरूपकौ अनुभव-यह शिव पद स्वरूपकौं अनुभव, त्रिभुवनसार अनुभव, अनुभव अनन्त कल्याण, अनुभव महिमा भण्डार, अनुभव अतुल बोध फल, अनुभव स्वरस रस, अनुभव स्वसवेदन, अनुभव तृप्ति भाव, अनुभव अखण्ड पद सर्वस्व,

अनुभव रसास्वाद, अनुभव विमल रूप, अनुभव अचल ज्योति रूप प्रगट करण, अनुभव-अनुभवके रस में अनन्त गुणकार रस है, पंच परम गुरु अनुभवतें भय होंहिगे। अनुभवसौ लगेगे सकल संत महत भगवत। तातें जे गुणवन्त हैं, ते अनुभव कौ करौ। सकल जीव राशि, स्वरूपकों अनुभवो। यह अनुभव-पंथ निरग्रन्थ साधि साधि भगवत भये।

परिग्रहवंत सम्यग्दृष्टि हू अनुभवको कवहूं-कवहूं करै हैं, तेहू धन्य हैं। मुक्ति के साधक है। जा समय स्वरूप-अनुभव करै है, ता समय सिद्ध समान अमलान आत्मतत्त्वकौं अनुभवै है। एकोदेश स्वरूप अनुभवमें स्वरूप अनुभव की सर्वस्व जाति पहिचानी है। अनुभव पूज्य है, परम है, धर्म है, सार है, अपार है, करत उद्धार है, अविकार है, करै भवनार है, महिमा को धारै है। दोष कौ हरणहार है। यातैं चिदानन्द को सुधार है।

सवैया

देव जिनेन्द्र मुनीन्द्र सबै, अनुभौ रस पीयकै आनन्द पायौ।
केवलज्ञान विराजत है नित, सो अनुभौ रस सिद्ध लखायौ॥
एक निरंजन ज्ञायक रूप, अनूप अखण्ड स्व-स्वाद सुहायौ।
ते धनि है जग माँहि सदैव, सदा अनुभौ निज आपकी भायौ॥

अडिल्ल

यह 'अनुभव-प्रकाश' ज्ञान निज दाय है।
करि याकौ अभ्यास संत सुख पाय है॥
यामें अर्थ अनूप सदा भवि सरदहैं।
कहे "दीप" अविकार आप पदकौं लहैं॥

८ समाधि-मरण स्वरूप एवं भेद

आचार्य शिवार्य
टीकाकार—पं. सदासुखदास जो

यह जीव अनादिकालतै निगोद ही मे अनन्तानन्त जन्ममरण कीया अर् कदाचित् कोई निगोदतै निसरया तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, प्रत्येकवनस्पतिकाय, तथा वेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रितिर्यञ्च, कुमानुष, नरक मे परिभ्रमण करता बहुरि निगोद गया, कदाचित् कोई मनुष्य उच्चकुलादि इन्द्रियपूर्णतादि सामग्री पावे तो ऐठे मनकूं मिथ्यात्व विषय कषाय परिग्रहादि मे लगाय फेरि निगोदवास जाय करे है।

कैसी है निगोद? जामैं तैं अनन्तानन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाय तोहू निकसना नही होय है।

बहुरि कैसीक है? जामैं मन नही, इन्द्रिय नाही, विषय नाही एक श्वास मे अठारे बार जन्ममरण करना है। तातैं दुःखतै जो उबरयो चाहो हो तो मनकूं मिथ्यात्वादि हिंसाकषायादि पापनितैं रोकना योग्य है।

मन की स्थिरता :–

चित्तं समाहिदं जस्स होज्ज वाज्जिदविसोत्तियं वसियं।
सो वहदि णिरदिचारं सामण्णधुरं अपरिसंतो॥

अर्थ :—जाका मन अशुभपरिणति रहित होय तथा जिस पदार्थ मे जोडै तिसमे ही तिष्ठे ऐसा आपके बशवर्ती होय, तथा हित अहित जाणता सता सावधान होय सो ही पुरुष रागद्वेषादि उपद्रव रहित तथा क्लेशरहित मुनिनि का चारित्र भार वहिवेकूं समर्थ होय है।

जाका मन चलाचल है ताकै चारित्र का पालना नही होय है।

त्यागपूर्वक आत्मभावना :–

अणुसज्जमाणए पुण समाधिकामस्स सव्वमुवहरिय।
एक्केक्कं हावेंतों ठवेदि पोराणमाहारे॥

अणुपुव्वेण य ठविदो संवट्टे दूण सव्वमाहारं ।
पाणयपरिक्कमेण दु पच्छा भावेदि अप्पाणं ।।

अर्थ :—आहार मे अनुरागवान् जो क्षपक ताके समाधि मरण करावने के इच्छुक जे परमदयालु गुरू जो ऐसे सत्यार्थ उपदेशकरि एकएक आहारसू ममत्व छुड़ायकरिकै अर पुरातन आहार जो लालसा रहित नीरस आहार तोमेहू चाहना नही ऐसे आहारतै विरक्तता मे स्थापन करै, पाछै अनुक्रमकरिकै सर्व आहार की अभिलाषाकूं सकोच करिकै अर पानक जो पीवनेयोग्य जलादिक तामै क्षपककूं स्थापन करै अर पश्चात् सर्व आहारादिक की अभिलाषा रहित हुवा सत्ता शुद्ध ज्ञानानन्द अविनाशी अखंड ज्ञाता दृष्टा अपना आत्मा ताही भावना करे ।

परंपरा से निर्वाण प्राप्तिः—

सल्लेहणाए मूलं जो वच्चइ तिव्वभत्तिरायेण ।
भोत्तूण य देवसुहं सो पावइ उत्तमं ठाणं ।।

अर्थ :—जो साधु वा श्रावक तीव्र भक्ति का रागकरिके सल्लेखना करने वाले के चरणाविदाके निकट गमन करै सो देवनि का सुख भोग करिके अर उत्तमस्थान जो निर्वाण ताही प्राप्त होय है।

समाधि में दृढ़ता,—

एवं सुदिपरिणामो जस्स दढो होदि णिच्छिदमदिस्स ।
तिव्वाए वेदणाए वोच्छिज्जदि जीविदासा से ।।

अर्थ :— समाधि मरण मे निश्चित है वुद्धि जाकी ताकै तीव्र वेदना हो तो भी ऐसा दृढ परिणाम होय है, जो जीव ने मे वाछा का अभाव होय है ।

भावार्थ :—जाकै आराधना मरण करने में दृढ परिणाम होय है ताकै तीव्रवेदना होतां भी ऐसा परिणाम नही होय है जो मरण बहात वुरी । यदि कोई इलाजतैं जीवना होय तो श्रेष्ठ है । ऐसी वांछा ही का अभाव होय है ।

समाधिधारक के उत्तरोत्तर वृद्धिः—

सल्लेहणं करेंतो सव्वं सुहसीलयं पयहिदूण ।
भाव सिदि मारूहिता विद्धरेज्ज सरीरणिव्विन्णो ॥

अर्थ :—सल्लेखनाकू करने वाला पुरुष शरीरतै विरक्त हुवा सर्व सुखस्वभाव छोड़िकरी शुद्धभावनि की परम्परा ताहि प्राप्त होय करिके प्रवर्तो ।

भावर्थ :— ऐसे भावनि की वधवारी करै, जो मैं शरीर अनेक

वार धारण किया, तातैं शरीरधारण सुलभ है, अर यह शरीर अशुचि है अर निरन्तर पोषता पोषता बिगड्या जाय है तथा हजारों उपकार करता भी दु:ख उपजावे है तातैं कृतघ्न है, अर या शरीर का बड़ा भार वहना है, या बराबरी कोऊ दु:खदाई भार नाही तथा यह शरीर रोगनि की खानि है निरन्तर क्षुधा तृषादिक हजारां वेदन का उपसावन हारा है।

आत्माकूं अत्यन्त पराधीन करनेकूं बांदग्रह समान है जरामरण करि व्याप्त है।

वियोगादि करि हजारां संक्लेश उपजावन हारा है ऐसा शरीर मे नि:स्पृह होय अर आसन मे, शयन मे, भोजनादिकनि मे, सुखरूप स्वभावछोड़करि **परमवीत रागरूप आत्मानुभव के सुख के आस्वादन रूप भावनि की श्रेणी चढ़ना योग्य है।**

समाधिधारक का मोक्ष निश्चित:—

एगम्मि भवग्गहणे समाधिमरणेण जो मदा जीवो।
ण हु सो हिंडदि बहुसो सत्तट्ठ-भव पमोत्तूण।।

अर्थ :— जो जीव एक भव में समाधिमरणकरि मरै है सो जीव सात आठ भवनै छोडि बहुत ससार परिभ्रमण नही करै है।

भावार्थ :—एकवारहू समाधिमरण हो जाय तो सात आठ भव सिवाय संसार भ्रमण नही करै है।

मरण के भेद:—

मरणाणि सत्तरह देसिदाणि तित्थंकरेहिं जिणवयेण।
तत्थ वि य पंच इह संगहेण मरणाणि वोच्छामि।।

अर्थ :— तीर्थंकर देव जे है ते परमागमके विषै सत्तरह प्रकार मरण का उपदेश कीया है तिनि सत्तरह मरणानि मे इस भगवती आराधना ग्रन्थविषै सग्रहकरि प्रयोजनभूत पंच प्रकार मरण कहै है।

भावार्थः—यो जीव अनन्तकालसूं जन्ममरण अनन्ते कीये ते कुमरण कीये, एकवारभी सम्यङ्‌मरण नही किया सो अब जो एक वार भी सम्यङ्‌मरण जो च्यारि आराधना (दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप) सहित मरण करै तौ फेरि मरण का पात्र नही होय तातै करुणा-निधान वीतराग गुरू अब शुभमरण का उपदेश करे है।

मरण के सत्तरह भेद :— (१) आवीचिकामरण (२) तद्भव-मरण (३) अवधिमरण (४) आधंतमरण (५) बालमरण (६) पडितमरण (७) आसन्नमरण (८) बाल पडितमरण (९) सशल्य-मरण (१०) पलायमरण (११) दशार्तमरण (१२) विप्रावमरण (१३) ग्रध्रपृष्ठमरण (१४) भक्तप्रत्याख्यानमरण (१५) इगिनीमरण (१६) प्रायोपगमनमरण (१७) केवलिमरण।

सामान्य मरण की अपेक्षा समाधिमरण के श्रेष्ठता—

विशिष्ट मरण के पांच प्रकारः—

पंडिद पंडिदमरणं पंडिदयं बालपंडिदं चेव।

बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च॥

(१) पंडित पडितमरण, (२) पडित मरण (३) बालपडितमरण (४) बालमरण (५) बाल बालमरण

प्रशंसा योग्य तीन मरणः—

पंडित पंडिदमरणं च पंडिदं बालपंडिदं चेव।

एदाणि तिण्णि मरणाणि जिणा णिच्चं पसंसंति॥

जिनेन्द्र भगवान जे हैं ते पडित पडितमरण, पडितमरण, बाल-पडितमरण, इनि तीन मरणनिकूं नित्य ही प्रशसा करत है।

पांच प्रकार मरण के स्वामीः—

पंडिदपंडिदमरणे खीणकसाया मरंति केवलिणो।

विरदाविरदा जीवा मरंति तदियेण मरणेण॥

पायोपगमणमरणं भत्त पइण्णा य इंगिणी चेव

तिविहं पंडिदमरणं साहुस्स जहुत्त चारिस्स

अविरदसम्मादिट्ठी मरन्ति बालमरणे चउत्थम्मि।
मिच्छादिट्ठी य पुणो पंचमए बाल बालम्मि॥

क्षीण कहिये नाश हुए है कषाय जिनके ऐसे भगवान् केवली का निर्वाण गमन सो पडित पडितमरण है।

वहुरि विरताविरत जे देश व्रतसहित श्रावक ते सूत्र की अपेक्षा तृतीयमरण जो बालपडित मरणविषै मरे है।

वहुरि आचाराग की आज्ञाप्रमाण यथोक्तचारित्र के धारक प्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती साधुमुनि तिनिकै पडितमरण होय है।

सो पडितमरण तीन प्रकार है।

पंडितमरण के तीन भेद:—

(१) भक्त प्रतिज्ञा (२) इगिनी (३) प्रायोपगमन

तिनिमे भक्तप्रतिज्ञा में तो सघसू वैय्यावृत्य करावै वा आपकी वैय्यावृत्य आप करै वा अनुक्रमसू आहार कषाय देहकू त्याग करे है सो भक्ततिज्ञामरण दो प्रकार है—

भक्त प्रतिज्ञा मरण के भेद :—(१) सविचार (२) अविचार।

सविचार भक्तप्रतिज्ञा मरण:—जहा मरण का निश्चय नही होय, बहोत काल मे मरण होणहार होय अर्हादिक अधिकार तिनिका विचार जो विकल्प, तिनिकरि सहित मरण, पराक्रमसहित जो आराधनामरण मे उत्साह सहित जीव सविचार भक्त प्रतिज्ञा मरण है।

अविचार भक्तप्रतिज्ञा मरण—जो अर्हादि अधिकार ताकरि विचाररहित शीघ्र आया जो मरण सो उत्साहरहित अविचार भक्तप्रतिज्ञा मरण है।

अर इगिनीमरण विषै परकरि वैय्यावृत्य नही करावे तथा आहार पान रहित एकाकी वन मे देहका त्याग करै कदाचित् उठना, वैठना, चालना, पसारणा, संकोचना, सोवना या प्रकार आपकी टहल आप करे परसूं नही करावै कदाचित् बिना कराया कोई करै, तो आप मौन रहै।

बहुरि प्रयोपगमन विषै आपका वैय्यावृत्य आप भी न करै परसू भी नहीं करावै, सूका काष्ठवत् वा मृतकावत् सर्वकायवचन की क्रिया रहित यावज्जीव त्यागी होय धर्मध्यान सहित मरण करै।

बहुरि अविरत सम्यग्दृष्टि व्रतसयम रहित केवल तत्वनि की श्रद्धाकरि सहित मरै सो बालमरण जानना।

बहुरि जाकै सम्यग्त्वव्रत दोऊ नही ऐसा मिथ्यादृष्टि का मरण सो बालमरण है।

सल्लेखना के भेद:—

एवं भावेमाणो भिक्खू सल्लेहणं उवक्कइ।
णाणाविहेण तवसा बज्झेणब्भंतरेण तहा ॥

ऐसैं भावना करता जो साधु, सो नाना प्रकारके बाह्य अर आभ्यन्तर तप, ताकरिकें सल्लेखना जो शरीरका अर कषाय का कृश करना ताहि कहे है :—

सल्लेहणाय दुविहा अब्भंतरिया य बाहिरा चेव।
अब्भंतरा कसायेषु बाहिरा होंदि हु सरीरे ॥

सल्लेखना दोय प्रकार है—एक आभ्यन्तर सल्लेखना, दूजी बाह्य सल्लेखना।

तहा जो क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायनि का कृश करना सो आभ्यन्तर सल्लेखना है और शरीर का कृश करना सो बाह्य सल्लेखना है।

सर्व जे बलवान रस, तिनकै त्याग करिकै अर प्राप्त हुवा जो रुक्ष भोजन वा और हू रसादिरहित भोजन, ताकरिकै शरीरकूं अनुक्रमतै कृश करै अर शरीरनै कृश करनेवाले हू बाह्यतप है।

समाधिमरण के कर्त्ता, कारयिता, अनुमोदक और दर्शकों की प्रशंसा

धन्य है वे आत्मन्:—

ते सूरा भयवन्ता आहच्चयइदूण संघमज्झम्मि।
आराधणापडायं चउप्पयारा हिदा जेहिं ॥

जे शूरवीर ज्ञानवंत संघ के मध्य प्रतिज्ञा करि च्यारि प्रकार आराधना (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप) रूपीपताका ग्रहणकरि **ते जगत में धन्य है।**

जिनूनै भगवानसम्बन्धी आराधना पाई, **ते धन्य है, ते ज्ञानवंत है तिनूनै समस्त लाभ पाया।** जे आराधना अनतकालहू मै प्राप्त नही ते प्राप्त भई, इस सिवाय तीन लोकमें लाभ नहीं है।

इस लोकके बिषै जिन आराधनानिकू महाप्रभाववान पुरुष हू नही प्राप्त भये ऐसी भगवान सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकू जे समस्त प्रकारकरि आराधना करी, **तिनका कहा महिमा कहूं?**

ते महानुभव निर्यापकहू धन्य है, जिनूनै सर्व आदरकरिकै समस्त शक्ति करिकै तिस क्षपकके समस्त आराधना कराई।

जो पुरुष अन्य धर्मात्मा पुरुषके समस्त प्रकार आदरकरि, शरीरकी वैय्यावृत्यकरि, धर्मोपदेश करि, धर्म मे दृढताकरि, आहार-पान औषध स्थान के दानकरि, आराधना करावै है तिष पुरुपकै निर्विघ्न समस्त आराधना परिपूर्ण होई है। अन्य धर्मात्मा पुरुपकू आराधनामरण करायने में जो सहायी होय है ते च्यारि आराधना की पूर्णता पाय लोकाग्रस्थान मे निवास करे है।

बहुरि जे अराधना करनेवाले के दर्शनकू जाय है, तिनकी वड़ी महिमा है।

ते पुरुषहू जगत मे धन्य हैं—कृतार्थ है—जे पापकर्म मैल के हरने वाले क्षपकरूप तीर्थमे समस्त आदरभक्ति करि संयुक्त स्नान करै है। अर जे भक्ति सयुक्त भये क्षपकके दर्शन में प्रवर्तै हैं, ते धन्य हैं कृतार्थ हैं।

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य द्रष्टि आपा लखो, पर्जयनय करि गौण॥

— पं० जयचन्द्र जी

९ समाधि मरण

श्री शिवलालजी

परम पच परमेष्ठी ध्यान पर, परम ब्रह्म का रूप आया नजर
परमब्रह्म की मुझको आई परख, हुआ उरमें सन्यास का अब हरष ।१।

लगन आतमारामसो लग गई, महा मोह निद्रा मेरी भग गई ।
खुशी दृष्टि चैतन्य चिद्रूप पर, टिकी आनकर ब्रह्म के रूप पर ।२।

परम रस की अब तो गटा गट मेरे, शुद्धातम रहस की रटारट मेरे ।
यहा आज रोने का क्या शोर है, मेरे हर्ष आनन्द का जोर है ।३।
निरजन की कथनी सुनाओ मुझे, न कहा और न वतिया बताओ मुझे ।
न रोओ मेरे पास इस वक्तमे कि तिष्ठा हू खुशहाल खुश वक्त मे ।४।

जरा रोवने का तअम्मुल करो,
नजर मिहरवानी की मुझपर धरो
उठो अब मेरे पास से सब कुटुम्ब,
तजो मोह मिथ्यात्व का सब विटम्ब ।५।

जरा आत्मा भाव उर आने दो,
परम ब्रह्म की लय मुझे ध्याने दो
मुझे ब्रह्म चर्चा से वर्ते हुलास,
करो और चर्चा न तुम मेरे पास ।६।

जो भावे तुम्हे सो न भावे मुझे,
न झगड़ा जगत का सुहावे मुझे
ये काया पे पुटकी पड़ी मोत की,
निगाह आई शिवलोक के नाथ की ।७।

कि ये देह चिरकाल की है मुई,
मेरी जिंदगानी से जिन्दा हुई ।
तजा हमने नफरत से ये मुर्दा आज,
चलो यार अब चल करे मुक्तिराज ।८।

जिस्म झोपड़ी को लगी आग जब,
हुई मेरे वैराग की जाग तब।
सम्हाले मैं रत्नत्रय अपने तीन
लियाब्रह्म अपने को मैं आप चीन।६।

जिसे मोत है उसको है, मुझको क्या,
मुझे तो नही फेर भय मुझको क्या।
मेरा नाम तो जीव है जीव हूं,
चिरजीव चिरकाल चिरजीव हू

अखदित, अमडित, अरुपी, अलख अनेही अदेही अजेयी अचख परम ब्रह्मचर्य परम शाततम, निरालोक लोकेश लोकात नम परम ज्योति परमेश परमात्मा, परम सिद्ध प्रसिद्ध शुद्धात्मा चिदानन्द चैतन्य चिद्रूप हूं। निरंजन निराकार शिव भूप हूं, चिता मे धरो इसको ले जाके तुम, हुए तुमसे रुखसत है आज हम कही जाओ मे देह क्या इससे काम तजी इसको रगवत मुहबत तमाम ॥

रह रह कर बहुत कुछ मुए,
मगर आज निर्गुण निरंजन हुए॥
तिहुं जग मे सन्यास की ये घड़ी.
मेरे हाथ आई ये अद्‌भुत जडी
विषय विष से निर्विष हुआ आज मैं,
चला चल से अविचल हुआ आज मैं॥
परम ब्रह्म लाहा लिया आज मै,
परम भाव अमृत पिया आज मै।
घटा आत्म उपयोग की आई झूम,
अजब तुर्क तुरियां बनी रंग भूम।
शुक्ल ध्यान टाकी की टॅकोर है,
निजानन्द झाझन को झकोर है
अजर अमर हूं न मरता कभी,
चिदानन्द शाश्वत न डरता कभी।
कि संसार के जीव मरते डरे,
परम पद का "शिवलाल" वन्दन करे।

१० लघु समाधि मरण

कविवर—द्यानतराय जी

गौतम स्वामी बन्दो नामी, मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊ निशदिन ध्याऊ, गाऊ वचन कला है।
देव धर्म गुरु प्रीति महां दृढ़, सांत व्यसन नही जाने।
त्यागि बाईस अभक्ष, संयमी बारह व्रत नित ठाने ।।१।।

चक्की चूली उखरी बुहारी, पानी त्रस ना विरोवे।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नही, छहो करम इमि सोधे।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा, सयम तप चहु दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी, सामायिक विधि ज्ञानी ।।२।।

जाप जपे तिहुं योग धरें दृढ़, तनु की ममता टारे।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे, ध्यान समाधि विचारे।
आग लगे अरु नाव जब डूबे, धर्म विघन जब आवे।
चार प्रकार आहार त्यागि के, मन्त्र सुमन मे ध्यावे ।।३।।

रोग असाध्य जरा बहु देखे, कारण और निहारे।
बात बडी है जो बनि आवे, भार भवन को डारे।
जो न बने तो घर मे रह करि, सब सो होय निराला।
मात पिता सुन त्रिय को सोपे, निज परिग्रह अहि काला ।४।।

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावक जन, कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब ही सो कहिके, मन का शल्य हनई।
शत्रुन सो मिल मिल कर जोरे, मै वहु करी है बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने, ते सब बकसो भाई ।।५।।

धन धरती जो मुख सो माँगे, सो सब दे सन्तोषे।
छहो काय के प्रानी ऊपर, करुणा भाव विशेषे।
उच नीच घर वैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पयले।
दूध धारी क्रम क्रम तज के, छाछ अहार गहेले ।।६।।

छाछ त्यागि के पानी राखे, पानी तजि सथारा।
भूमि माहि थिर आसन माडै, साधर्मि ढिग प्यारा।

जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवाणी पढ़िये ।
यो कहि मौन लियो सन्यासी, पच परम पद लहिये ।।७।।

चार अराधन मन मे ध्यावे, बारह भावना भावे ।
दश लक्षण मन धर्म विचारे, रत्नत्रय मन ल्यावे ।
पैतिस सोलह षटपन चारो, दुइइक वरण विचारे ।
काया तेरी दुख की ढेरी, ज्ञान मई तू सारे ।।८।।

अजर अमर निज गुणासां, पूरे परमानन्द सुभावे ।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब, तीन जगतपति ध्यावे ।
क्षुधा तृषादिक होई परीषह, सहे भाव सम राखे ।
अतीचार पांच सब त्यागे, ज्ञान सुधारस चाखे ।।९।।

हाड मांस सब सुख जाय जब, धरम लीन तन त्यागे ।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग मे, सेज उठे ज्यो जागे ।
तहां ते आवे शिव पद पाये, विलसे सुक्ख अनन्तो ।
'द्यानत' यह गति होय हमारो, जैन धरम जयवन्तो ।।१०।।

❀ वस्तु विचार ❀

काया कचन कामिन, विषय भोग सब जोय ।
क्षण भगुर संसार मे, रहि न सके थिर कोय ।।
जेती वस्तु जहान मे, छिन-छिन पलटा खाय ।
जो दिखती है भोर मे, सो संध्या मे नाय ।।
इस जग में कोई कहीं, वस्तु न ऐसी खास ।
जिसमे हरदम के लिए, किया जाय विश्वास ।।
लक्षमो संध्या की छटा, यौवन जल का फेन ।
राजत अक्षि निमेष तक, जात भ्रात बहेन ।।

—पं शिवालाल जी

११ समाधिमरण भाषा

श्री सूरचन्दजी

नरेन्द्र छन्द

वन्दी श्री अरहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई ।
इस जगमें दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूं प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माही ।
अंत समय मैं यह वर मागूं, सो दीजै जगराई ॥१॥

भव भव मे तनधार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो ।
भव भव मे नृपरिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थ्यायो ॥
भव भव मे तन पुरुषतनो धर, नारी हू तन लीनो ।
भव भव मे मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ॥२॥

भव भव मे सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
भव भव मे गति नरकतनी धर, दु.ख पाये विधि योगे ॥
भव भव मे तिर्यंच योनि धर, पायो दु.ख अति भारी ।
भव भव मे साधर्मीजिन को, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥

भव भव मे जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो ।
भव भव मे मैं समवशरण मे, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एतो वस्तु मिली भव भव मैं, सम्यकगुण नहिं पायों ।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो ।
एकबार हूं सम्यक्युत मे, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दु.ख काँई ।
देह विनासी मैं निजभासी, योति स्वरूप सदाई ॥५॥

विषयकषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या सरधान हियेबिच, आतम नाहिं पिछान्यौ ॥
यो कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यक-दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो ॥६॥

अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मागो ।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरू कषाय मत जागो ॥

ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधि युत मरण होय मुझ,अरू मिथ्या पद छीजे ।।७।।

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहे, भीतर विस्टा पावै ।।
अति दुर्गन्ध अपावन सौ यह, मूरख प्रीति बढ़ावे।
देह विनसी जिय अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ।।८।।

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातें प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिले जब भाई, तब या में क्या छीजै ।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ।।९।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो; इस अवसर के माही।
जीरनतन से देत नयो यह, या सम साहू नाही ।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ।।१०।।

जो तुम पूरब पुण्य किये है, तिन को फल सुखदाई।
मृत्युमित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ।।
रागरोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय मे समता धारो, परभव पंथ सहाई ।।११।।

कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुःख पावे।
तन पिंजर में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे ।।
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर से काढ़े ।।१२।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गंध सुगधित अतर लगाये, षटरस असन कराये ।।
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी ।।१३।।

मृत्युराय को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊं।
जामे सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊं ।।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहि सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय मे ये ही परिजन, सब ही हैं दुःखदाई ।।१४।।

यह सब मोह बढ़ावनहारे, जिय को दुर्गति दाता ।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मागो इच्छा जेती ।
समता धरकर मृत्यु करो, तो पावो संपति तेती ।।१५।।

चौआराधन सहित प्राण तज, तो यह पदवी पावो ।
हरि प्रतिहर चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्गमुकति मे जावो ।।
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे ।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ।।१६।।

इस तन मे क्या राचे जियरा, दिन-दिन जीरन होहै ।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है,या सम अथिर सु को है ।।
पाचो इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवे ।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावे ।।१७।।

मृत्युराज उपकारी जिय को, तन सो तोहि छुडावे ।
नातर या तन बंदीगृह मे परयो परयो विललावे ।।
पुदगल के परमाणू मिलके, पिंड रूप तन भासी ।
याही मूरत मे अमूरती, ज्ञानजोति गुण खासी ।।१८।।

रोगशोक आदिक जो वेदन, ते सब पुदगल लारे ।
मै तो चेतन व्यधि विना नित, ऐसो भाव हमारे ।।
या तन सो इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है ।
खान पान दे याको पोष्यो, अब सम भाव ठन्यो है ।।१९।।

मिथ्यादर्शन'अरु'आत्मज्ञानबिन, यह तन अपनो जान्यो ।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहि पिछान्यो ।।
तन विनशतते नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ।।२०।।

अब निज भेद जथारथ समज्यो, मै हू ज्योति स्वरूपी ।
उपजे विनसै सो यह पुदगल, जान्यो याको रूपी ।।
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख है, सो सब पुगदल सागे ।
मै जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दु ख भागे ।।२१

बिन समता तनऽनत धरे मै, तिनमे मै दुख पायो ।
शास्त्रघाततेंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो ।।

बार अनतहि अग्नि माहिं जर, मूयो सुमति न लाओ ।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्तवार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥२२॥

बिन समाधि ये दुःख लहे मै, अब उर समता आई ।
मृत्युराज को भय नहिं मानूं, देवे तन सुखदाई ॥
यातें जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै ।
जपतपबिन इस जग के मांही, कोई भी ना सीजै ॥२३॥

स्वर्ग सम्पदा तप सों पावे, तप सो कर्म नसावै ।
तप ही से शिव कामिनिपति है, यासों तप चित लावै ॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोई नाहिं सहाई ।
मात पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब है दुखदाई ॥२४॥

मृत्यु समय मे मोह करे ये, ताते आरत की हे ।
आरतते गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है ॥
और परिग्रह जेते जग मे, तिनसो प्रीति न कीजे ।
पर भव मे ये सग न चाले, नाहक आरत छीजे ॥२५॥

जे जे वस्तु लखत है ते पर, तिन, सो नेह निवारो ।
पर गति मे ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥
जो परभव मे सग चले तुझ, तिनसों प्रीति न कीजे ।
पच पाप तज समता धारो, दान चार विधि दीजे ॥२६॥

दश लक्षण मय धर्म धरों उर, अनुकम्पा उर लावो ।
षोड़श कारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो ॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो ।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सो अनुरागो ॥२७॥

अन्त समय में यह शुभ भावहीं, होवें आनि सहाई ।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावे, ऋद्धि देहि अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमै समता लाके ।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाके ॥२८॥

मनथिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाही ॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी ।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पानव, आराधन उरधारी ॥२९॥

तिनमें कछुइक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भाव सहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै ।।
अरु समता निज उरमें आवे, भाव अधीरज जावै।
यो निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये बिच लावै ।३०।

धन्य-धन्य **सुकुमाल महामुनि,** कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुगल बच्चा जुत, पाव भख्यो दुखकारी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, "मृत्यु महोत्सव" भारी ।।३१।।

धन्य-धन्य जु **सुकौशल स्वामी,** व्याघ्र ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सो हित लायो ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु.ख है, "मृत्यु महोत्सव" भारी ।।३२।।

देखो **गजमुनि** के शिर ऊपर, विप्र अग्नि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकडी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, "मृत्यु महोत्सव" भारी ।।३३।।

सनत कुमार मुनी के तन मे, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासो हूवो, तब चित्यो गुण आपी ।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु.ख है, "मृत्यु महोत्सव" भारी ।।३४।।

श्रेणिकसुत, गंगा में डूब्यो, तब जिन नाम चितार्यो।
धर सलेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भार उर धार्यो ।।
यह उत्सर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ।।३५।।

समंतभद्र मुनिवर के तन मे, क्षुधा वेदना आई।
तो दुःखमे मुनि नेक न डिगियो, चित्यो जिनगुण भाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दु ख है? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ।।३६।।

ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशाबी तट जानो।
नदी मे मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो ।।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधना चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥३७॥

धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढो ।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥३८॥

श्रीदत्त मुनि को पूर्वजन्म को, वैरी देव सु आके ।
विक्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साधु मन लाके ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥३९॥

वृषभ सेनमुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धर्यो मनलाई ।
सूर्य धाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४०॥

अभयघोष मुनि काकदीपुर, महा वेदना पाई ।
वैरी चढ ने सब छेद्यो, दुःख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४१॥

विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी ।
शुभ भावन सो प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४२॥

पुत्रचिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता ।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४३॥

दंडकनामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदि ।
तापर नेक डिग नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४४॥

अभिनंदन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे ।
तो भी श्री मुनि समता धारी, पूरब कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गोधर के माही, मूंद अगिनि परजाल्यो ।
श्री गुरु उर समभाव धारकर, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥

सातशतक मुनिवर दुख पायो, हथनापुर मे जानो ।
बलि ब्राह्मण कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहि मानो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता. आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४७॥

लोह मयी आभूषण गढ के, ताते कर पहराये ।
पाँचों पाडव मुनि के तन में, तो भी नाहि चिगाये ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? 'मृत्यु महोत्सव' भारी ॥४८॥

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी ।
वे ही हमको हो सुखदाता, हर है टेव प्रमादी ॥
सम्यक दर्शन ज्ञान, चरण तप, ये आराधन चारो ।
ये ही मोको सुख की दाता, इन्हे सदा उर धारो ॥४९॥

यो समाधि उरमाही लावो, अपनो हित जो चाहो ।
तज ममता अरु आठो मदका, जोति स्वरूपी ध्यावो ॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै ।
सो भी शकुन विचारे नीकु, शुभ के कारण साजै ॥५०॥

मात पितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै ।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै ॥
एक ग्राम जाने के कारण, करे शुभा शुभ सारे ।
जब पर गति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे ॥५१॥

सर्व कुटुम जब रोवन लागे, तोहि रुलावै सारे ।
ये अप शकुन करै सुन तोकों, तू यो क्यों न विचारै ॥

अब परगति की चालत ब्रिरियां, धर्म ध्यान उर आनो ।
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुःख हानो ।।५२।।

होय निःशुल्क तजो सब दुविधा, आतम राम सध्यावो ।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्व उर लावो ।।
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारो तेरो, यो उर निश्चय धारो ।।५३।।

दोहा

"मृत्यु महोत्सव" पाठ को, पढो सुनो बुधिवान ।
सरधा घर नित सुख लहो, 'सुरचद' शिवथान ।।५४।।

पंच उभय नव एक नभ, सबत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ।।५५।।

❀ व्यर्थ चिन्ता छोड़ ❀

यह शरीर जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है । लक्ष्मी इन्द्रजाल के सदृश मायामय है—क्षणभर में अदृश्य हो जाती है । धन, स्त्री, पुत्र, बान्धव और माता-पितादिक की स्थिति उन मेघ पटलो जैसी है जो तीव्र पवन से प्रताड़ित होकर छिन्न-भिन्न हुए देखते-देखते विलीन हो जाते हैं । और इन्द्रियो के विषय-सुख उसी प्रकार चचल है जिस प्रकार कि कामोन्मत्त स्त्री के कटाक्ष होते हैं । एक के बाद दूसरे की और दूसरे के बाद तीसरे की इच्छा बराबर चलती और बदलती रहती है । अतः इन शरीरादि की प्राप्ति में हर्ष करने से और इनका अभाव अथवा नाश होने पर—शोक करने से क्या नतीजा है ? कुछ भी लाभ नही है । अतः व्यर्थ चिन्ताएं छोड़ ।

—आचार्य पद्मनन्दि

१२ समाधि-शतक

-श्री बुधजन जी

दोहा

श्री आदीश्वर चरण-युग, प्रथम नमो चित ल्याय ।
प्रगट कियो युग आदि वृष, भजत सुमगल थाय ॥१॥

सन्मति प्रभु सन्मति करण, बन्दत विघ्न बिलात ।
पुनः पच परमेष्ठि को, नमो त्रिजग विख्यात ॥२॥

गौतम गुरू फिर शारदा, स्याद्वाद जिस चिन्ह ।
मगल कारण तास को, तमो कुमति हो भिन्न ॥३॥

मगलहित नमि देव श्री, अरिहत गुरू निर्ग्रन्थ ।
दयारूप वृष पोत भव, वारिधि शिवपुर पन्थ ॥४॥

इस विधि मगल करन से, रहत उदंगत दूर ।
विघ्न कोटि तत्क्षण टरैं, तम नाशत ज्यो सूर ॥५॥

श्री सर्वज्ञ सहाय मम, सुबुद्धि प्रकाशो आनि ।
तो कवित्त दोहान मे, रचों समाधि बखानि ॥६॥

मरण समाधि करे सु जो, सो नर जग गुण खान ।
इन्द्र चक्रपति हो पुन, अनुक्रम ले निर्वाण ॥७॥

देख गुमानीराम का, वचन रूप सुप्रबन्ध ।
लघुमति ता सकोचि के, रचै सु दोहा छन्द ॥८॥

पिंगल व्याकरणादि कुछ, लखो नही मति बाल ।
कठ राखने के लिए, रचो बालवत ख्याल ॥९॥

लघु धी तथा प्रमाद से, शब्द अर्थ लख हीन ।
बुध तन सोधि उचारियो, हसो न लख मति क्षीण ॥१०॥

मद कषायो से जु हो, शान्ति रूप परिणाम ।
तब समाधि विधि आदरे, मरण समाधिसु नाम ॥११॥

सो मे अब दृष्टान्तयुत, कहों त्रियोग सम्हार ।
भवि अहनिशि पढियोसु यह, कर परिणाम उदार ॥१२॥

छप्पय छंद

सूता ज्यों गृह सिंह ताहि इक पुरुष विचक्षण ।
जायत किय ललकार सिंह उठ देख ततक्षण ।।
हनन वृन्द रिपु ताँहि निकट आयो यह तेरे ।
सावधान हो चेत करो पुरुषारथ नेरे ।।
जवलो रिपु कुछ दूर है कम सम्हाल जीतो तिन्हें ।
यह महत्पुरुष की रीति है, ढोल किए आवत कने ।।१३।।

वचन सुनत यो सिंह गुफा से बाहर आयो ।
गर्जा घन जिमि सुनो शत्रु हिय थिर न रहायो ।।
जीतन को असमर्थ लाज हस्ती सब कापे ।
निर्भय हरि पोरूप सम्हाल नहिं सके जो जापे ।।
त्यो सम्यग्ज्ञानी नर सुधी मरण सयम विधि सेनलख ।
तिहि जीतन निज पोरूष जे सकल उपाधिक भावनख ।।१४।।

आवतकाल तटस्थ देख तव साहस ठाने ।
कर्म सयोग सदेह इती थिति पूरण जाने ।।
ताही से मम योग्य कार्य अव ढील न कीजे ।
जो चूको यह दाव घोर ससार पड़ीजे ।।
अतिकठिन काकतालीय ज्यो मनुजजन्म शुभवश लहा ।
सो वृथा गमाया धर्मबिन दौड़-दौड चहुगति बहा ।।१५।।

कर कषाय अति मन्द क्षमादिक दशव्रत ध्यावे ।
अन्तर आदम माँहि शुद्ध उपयोग रमावे ।।
करे राग रूप मोह शिथिल अति ही सो ज्ञानी ।
निरालम्ब चिद्रूप ध्यान धर वहुत गुण खानो ।।
तव रच रस स्वादआवे घनो अतुल भिन्न पाँचो दरव ।
इस निश्चयदृष्टि विलोकता लहै सुक्ख जो अकथ अव ।।१६।।

आनंद रत नित रहै ज्ञानमय ज्योति उजारी ।
पुरूषाकार अमूर्ति चेतना वहु गुण धारी ।।
ऐसा आतम देव आप जानन बुधि पागी ।
पर द्रव्यो से किसी भांति ना होवे रागी ।।
निज वीतराग ज्ञाता सुथिर अविनाशी पर जड़ लखा ।
वपु पूरन गलन असास्वता हम लख तन निजरस चखा ।।१७।।

समदृष्टी नर सदा मरण का भय ना माने।
आयु अन्त जब लखे स्वहित तब या विधि ठाने ।।
आयु अल्प इस देह तनी अब राह दिखावे।
अब करना मम चेत सावधानी यह दावे ।।
जिम रणभेरी के सुनत ही सुभट जाय रिपु पर झुके।
त्यो कालबली के जीतने साहस ठाने भव चुके ।।१८।।

सब जिय सोच विचार लखो पुदगल परजायी।
देखत एत्पति भई देखते अब खिर जायी ।।
मैं सरूप इस लखो विनाशिय पहिले याको।
सो अब अवसर पाय विलै जासी यह ताको ।।
मम ज्ञायक दृष्टारूप निज ताहि सबै विधि आदरों।
अब किस विधि देश नशे जू यह मैं तमाशगीरी करो ।।१९।।

मम स्वरूप द्रग ज्ञान सुक्ख वीरज अनन्त मय।
नर नारक पर्याय भेद बहुत भये पृषानय ।।
जो पदार्थ त्रैलोक मे सु ते तिन ही के कर्त्ता।
मे चित अमल अड़ोल नही तिन कर्त्ता हर्त्ता ।।
वे आपहि बिछुडे मिलें पूरे गले अचित सदा।
तो देह रखाया क्यो रहे भूल मर्म न पड़ो कदा ।।२०।।

सवैया

काम अनाइ भरो दु:ख मे पर द्रव्यो से एकहि जानो।
कालबली दृढगढ ग्रसौ लहि जरामरण फिर ठानो ।।
खेद लहो यश मोहतवे सु विचार सर्जे अब भूल दिखानो।
मैं निज ज्ञायक भावनको कर्त्ता अरु मुक्त सदा थिरजानो ।।२१।।

भो सत्सग से देह पुजे जग मो निकसे तन को सब जारे।
मानत देह रू जीव एकत्र नशे यह तो शट रोय पुकारे ।।
हाय पिता त्रय पुत्र कलत्र सुमात हित् कहा जाय पधारे।
और अनेक विलाप करे अति खेद कलेश वियोग पसारें ।।२२।।

एम विचार करे सु विचक्षण अक्षन देख चलो जग जाई।
कौन पिता त्रिय पुत्र हितू सो कलत्र यहा किन कौनकी माई ।।

को गृह माल कहां धन भूपण जात चली किनकी ठकुराई।
ये सब वस्तु विनस्वर ज्यो स्वप्ने में राज्य करे नरभाई ।।२३।।

देखत इष्ट लगे यह वस्तु विचारत ही कुछ नाहि दिखावे।
लो इस जान ममत्व सुभान त्रिलोक मे पुदगल जो दृढ आवे ।।
देह सनेह तजो तिस ही विधि रंचक खेद न मो चित पावे।
जाय रहा यह देश प्रतक्ष विगार सुधार न मोहि लखावे ।।२४।।

देखहु मोहतनी महिमा पर द्रव्य प्रत्यक्ष विनाशिक ढेरी।
है दुख मूल उभय भव मे जगजीव सवै इस माहि फसेरी ।।
मूरख प्रीति करे अति ही अपना तन जान रखावन हेरी।
मैं इक ज्ञायक भाव धरें सो लखो इस काल शरीर को बैरी ।।२५।।

दोहा

माखी बैठे खाड पर, अग्नि देख भग जाय।
काल देह को त्यो भखे, मो लख थिर न रहाय ।।२६।।
मरण योग्य पहिले मुआ, जीता मृतक न होय।
मरण दिखावत नाहि मम, मर्म गया सब खोय ।।२७।।

सवैया

चेतन के मरणादिक व्याधि लखी न त्रिलोक त्रिकाल मझारे।
तो अब सोच करो किस काज अनत दृगादिक भाव को धारे ।।
ता अवलोकत दु ख नशे, मम ज्ञान पियूष सु पूरित सारे।
ज्ञायक ज्ञेयन को यह जीव पे ज्ञेय से भिन्न अनाकुल न्यारे ।।२८।।
व्यापक चेनत ठौरहि ठौर यथा इक लोन डली रस पागी।
त्यो मै ज्ञान का पिंडहूं पै व्यवहार से देह प्रमाण सो लागी ।।
निश्चय लोक प्रमाणकार अनत सुखामृत से अनुरागी।
मूसमही गल मोम गयो नभ युक्त तदाकृति देखहु सागी ।।२९।।

दोहा

मैं अकलंक अवक थिर, मिलत न काहू माहि।
नशो देह भावे रहो, हमें न किहि विधि चाहि ।।३०।।

छप्पय छंद

कहे एक नर सोच देह तुम्हरी तो नाही।
पर याके सग ध्यान शुद्ध उपयोग लहाही ।।

एता वपु उपकार कहो सुन थिर चित भाई।
रत्न द्वीप नर आय एक झोपड़ी वनाई ।।
वहुरत्न एकठा करे अग्नि लगी बुझावे तव सुवर।
जव बुझत न जाने झोपड़ी रत्न लेय भागे सुनर ।।३१।।

दोहा

त्यो मम सयम गुण सहित, रहो देह ना वैर।
नशत उभय तो जानिये, सयम राखो घेर ।।३२।।

सयम रहता देह बहु, क्षेत्र विदेहा जाय ।
तप कर चक्री इद्र हो, अनुक्रय शिव थल पाय ।।३३।।

मोह गयो आकुल गई, ध्यान चिगावे कौन।
इन्द चक्र धर्नेन्द्र सुर, विष्णु महेश्वर जौन ।।३४।।

सवैया

देह सनेह करी किस कारण यह वपु ज्यो चपला चमकाई।
नांहि उपाय रखावन को कहु, औषधि मत्र रू तत्र बनाई ।।
जो तिथि पूरण होय तवे सुर इन्द्र नरेन्द्र हरी मृत्यु थाई।
दाव वनो हित साधन को बहुत लोग चिगावहि मै न चिगाई ।।३५।।

कुटुम्बादि ममत्व त्याग

छप्पय छन्द

अब कुटुम्ब के लोग सुनो हित सीख हमारी।
एताही सम्बन्ध देह तुम्हरो अवधारी ।।
तुम राखत न रहे सोच अपना कर भाई।
यह गति सबकी होई चेत देखो पितु भाई ।।
मोकरुणा आवत तुमतनी खेद धार क्योदुःखभजो।
वृष धार योग नित सुथिर हो ममत्वनसो अब तजो ।।३६।।

सवैया

जो दृढ व्याधि ग्रसे तन अन्त सुवेदना दुर्जय आवत तेरी।
कारण तास तने परिणाम चिगे लख साहस से बुद्धि फेरी ।।
पूरब सचित कर्म उदय फल आय लगो गद ने वपु घेरी।
भिन्न सदा गम रूप निराकुल है शरणा निज आतम केरी ।।३७।।

छप्पय छन्द

शरण पंच परमेष्ठि बाह्य जिन वृष जिनवाणी ।
रत्नत्रय दशधर्म शरण सुन हो चिद ज्ञानी ॥
और शरण कोई नाहिं नेम हमने यह धारो ।
इस विधि से उपयोग थाम कर एम विचारो ॥
अरितन्द देव गुरू द्रव्य-गुण, पर्यायन निर्णय करे ।
तब निज सुरूप मे आयकर साहस दृढथिति धरै ॥३८॥

सवैया

वपु मात पिता तुम एम सुनो ममदेह सनेह वृथा तुम धारो ।
को तुम को मे हाट तनी गति प्राप्त पयान करे जन सारो ॥
रीति भरें घटरहट तनी तुम अन्तर के दृढ खोल विचारो ।
आरतन दृढ़ सोच करो तुम आतम द्रव्य अनाकुल न्यारो ॥३९॥

छप्पय छन्द

यह सब भक्षी काल काल से बचे न कोई ।
देव इन्द्र थिति पूर्ण देख मुख रहे न सोई ॥
यम किंकर ले जाय आपन कथा कौन है ।
तन धारे सो मरे था कर खेद जौन है ॥
यह आजकाल जग मूवा मनुज सुन प्रति जिन वृष आदरो ।
यन निरोपाय जग रीति है जिन वृष भजँसाहस धरो ॥४०॥

स्त्री ममत्व त्याग

सवैया

हे त्रिय देहतनी सुनसीख सनेह तजो वपुसे से अब प्यारी ।
देहरूतो सम्बन्ध इतो अब पूर्ण हुओ नहिं खेद पसारी ॥
कार्य नही या तन से तुम राखहु नाहिं रहे तन नारी ।
पुदगल की पर्याय त्रिया नर सोच लखो दृगखोल निहारी ॥४१॥

छप्पय छन्द

भोग बुरे भव रोग वढ़ावत वैरी नीके ।
होवे विरस विपाक समय लगे सेवत नीके ॥
एकेंद्री वश होई विपति अति सें दुख पायो ।
कुंजर झष अलि शलभ हिरण इन प्राण गमाओ ॥

पंच करन वश होई जो जुगति घोर दुःख पावही ।
इन त्याग क्रिया सतोप भज, जो मम नार कहावही ।।४२।।

सवैया

भोग किये चिरकाल घने त्रिय कार्य सरो न कछू सुख पायो ।
इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग निरन्तर आकुलताप तपायो ।।
दुर्लभ जन्म सु बीत गयो अब कालके गालहि मे वपु आयो ।
सो त्रिय राखन कौन समर्थ वृथा कर खेद सो जन्म नशायो ।।४३।।

छप्पय छन्द

जो प्यारी मम नारी सीख हित चित्त धरीजो ।
शीलरत्न दृढ राख तत्व श्रद्धान सु कीजो ।।
धर्म बिना भव भ्रमे काल बहुत हम तुम सबही ।
गति चारों दुःखरूप धरी वृष गहो न कबही ।।
अब मम सुख वाछे नार तू वृष दृढाव तज आसतें ।
तुम भावन को फलभोग ही शीघ्र जाहु मो पासतें ।।४४।।

दोहा

नारी बुलाय सन्बोधि इम, सीख दई हितसाज ।
अब निज पुत्र बुलाइयो, ममत निवारण काज ।।४५।।

पुत्रादि ममत्व त्याग

छप्पय छन्द

पुत्र विचक्षण सुनो आयु पूरण अब म्हारी ।
तुम ममत्व बुद्धि तजो खेद दुख की करतारी ।।
श्री जिनवर का धर्म भली विधि पालन कीजो ।
पूजा जप तप दान शील सम्यक्त्व गहीजो ।।
फिर लोक निंद्य कारज तजो साधर्मिन से हित करो ।
तुम युग भव सुख हो हैं सु सुत सीख हमारी उर धारो ।।४६।।

सवैया

देह अपावन वस्तु जग त्रयकी या सग से मैली ।
कर्म गढो धन अस्थि जड़ी चर्म मढी मल मूत्र को थैली ।।
नव मल द्वार स्रवे वसु जाम कुवास घिनावन की वपु गैली ।
पोषत हो दुःखदोष करें सुत सोखत याहि मिले शिव सैली ।।४७।।

दोहा

जो तुम राखे देह यह, रहे तो राखे धीर।
मै बरजो ना तोहि सुत, करो सोच निज वीर ॥४८॥

सुन अनुक्रमसे गति-सबनि, यही होयगी मीत।
जिन वृष नौका बैठके, भव जल तर तज मीति ॥४९॥

दया बुद्धि से सीख में देई तोहि लख पीर।
होनहार तुम होइनो, रूचै सो कीजो धीर ॥५०॥

यो कह सब परिवार त्रिव, सुत मित्रादिक भूर।
मरण बिगाड़न लख तिन्हे किये पास से दूर ॥५१॥

जो भ्राता सुत आदि गृहभार चलावन योग।
सोंप ताहि हित सीख दे, तजै जगत का रोग ॥५२॥

और मनुष्यो से कछू, बतलाने को होइ।
ते बुलाय बतलाय कुछ, शल्य न राखे कोइ ॥५३॥

दया दान अरू पुण्य को, जो कुछ मन मे होइ।
सो अपने कर से करे, कल विलब न कोइ ॥५४॥

साधर्मी पडित निकट, राखे हम बतलाय।
मो मरणाम लखो चिगे, तुम दृढ़ कीजो भाय ॥५५॥

छप्पय छन्द

अब समदृष्टी पुरुष काल निज निकट सुजाने।
अब सम्हाल पुरूषार्थ शल्य तज साहस ठाने ॥
शक्ति सार धर नेम एम मर्यादा लीजे।
कर परिग्रह परिणाम रूप निज अनुभव कीजे।
यह सयश मन होई जो, पूरण आयु न हो कदा।
तो निज शक्ति प्रमाण समय की कर मर्यादा ॥५६॥

सवैया

शक्ति प्रमाण कहो गुरू त्यागपै, शक्ति छिपाय नही कुछ त्यागे।
शक्ति छिपाय के त्याग करे प्रमाद दोष समाधि को लागे ॥
और अभक्ष्य अजानित औषधि, धातु रसादिक से नही पागे।
छोड़े जगत्त्रय की आशा तब, अन्तर आतम ज्योति सुजागे ॥५७॥

छप्पय छन्द

उतर खाटसे भूमि माहि दृढ आसन माडे।
सार्धमिन को निकट से सुइक टुक नाही छाडे ।।
शिथिल होई जो भाव कहा अनुभव से कोई।
कर विचार पुन तत्व देव गुरु निर्णय जोई ।।
इम खैंच थाप उपयोग शुचि आत्मरूप रमावही।
इम काल व्यतीत करे सु तब निपट मिकट तिथि आवही ।।५८।।

दोहा

तय द्वारश भावन भजे तीषण दु ख हो हान।
सो बरनो सक्षेप से, भवि नित करो बखान ।।५८।।

सवैया

यौवनरूप त्रियातन गोधन योग विनश्वर है जग भाई।
ज्यो चपला चमके नभ मे जिमि मदिर देखत जात बिलाई ।।
देय खगादि नरेन्द्र हरी मरते न बचावत कोई सहाई।
ज्यो मृग को हरि दोड दले बन रक्षक ताहि न कोई लखाहि ।।६०।।

जीव भ्रमे गति चार सहे दुःख लाख चौरासी करे नित फेरी।
पे न लहो सुख रच क़दा ससार को पार लहो न कदेरी ।।
पुरष जो विधि बन्ध किये फल भोगत जीव अकेलेहि तेरी।
पुत्र त्रिया नहिं सीर करें सब स्वारथ भीर करें वपु केरी ।।६१।।

ज्यौ जल दूधको मेल जिया तन भिन्न सदा नही मेलको धारे।
तो प्रत्यक्ष जुदे धनधान मिलें न कभी निज भाव भझारे ।।
देह अपावन अस्थि पलादि की रोग अनेक-सो पूरित सारे।
मूत्र मली-धर है सुगली नवद्वार श्रवे किमि कीजिए प्यारे ।।६२।।

आस्रव से यह जीव भ्रमे भवयोग चलाचल से उपजेंगे।
दु ख लहो चिरकाल घनोरचि जो बुधिवन्त तिन्हे सु तजेंगे ।।
पुण्य रूप पाप दुहू तनके निज आतमकी अनुभूति सजेंगे।
आबत कर्मन को बरजे तव सवर भाव सुधी भजेंगे ।।६३।।

कर्म झडे निजकालहि पायन कार्य, सरे तिनसे जिय केरो।
तो तप से विधिहानि करें कर निर्जरासे शिवमाहि वसेरो ।।

जो षटद्रव्य मई यहलोक अनादि को है न करोकिहि केरो ।
एक जिया भ्रमतो चिरको दुःख भोगत नांहि तजे भव फेरो ।।६४।।

अन्तिम ग्रीवक हद्द लहों पद सम्यकज्ञान नही, कहु पायो ।
आतमबोध सहो न कभी अति दुर्लभ जो जगमें मुनि गायो ।।
मोह से भाव जुदे लखके दृग ज्ञान व्रतादिक भाव बताओ ।
धर्म वही कहिये परमारथ या विधि द्वादश भावना भायो ।।६५।।

दारूण वेदना आयुके अन्तमें देह सरूप अनित्य विचारो ।
दुःख रू सुक्ख तो कर्मनकी गतिदेश बधो विधिके सँग सरो ।।
निश्चय से मम रूप दृगादिक देह रू कर्मन से नित न्यारी ।
तो मुझे दुःख कहा वपु के संग पूरव कर्म विपाक चितारी ।।६६।।

देहनशी बहुवार जो अग्र इसी विधि अन्त सुकष्ट लहायो ।
पे न लखो निज आतमरूप नही बहु जन्म समाधिहि पायो ।।
या भवमे सब योग बनो निज कार्य सुधारन को मुनि गायो ।
कर्म अरी हरि मोक्षत्रिया वर पूरणसुक्ख लहो सु सवायो ।।६७।।

काल अनादि भ्रमे जिय एकहि पंच परावर्तन कर फेरो ।
द्रव्य रू क्षेत्र सुकाल तथा भव भाव कथा नित की बहुतेरी ।।
बार अनत किये तहां पूरण अन्त लहो भवका न कदेरी ।
को वरने दुःख की जु कथा गुणराज थके बुधि अल्पजू मेरी ।।६८।।

नित्य निगोद सुभोन जियातज जोकहु राशि व्यवहारमे आयो ।
भाग्य उदय त्रसकाय धरी विकलत्रय में रूल खेद लहायो ।।
वा पचेन्द्रिय होई पशु सबलीन हतो निबला हत खायो ।
भूख तृषा हिमताप तपो अतिभार बहो दृढ़ बन्धन पायो ।।६९।।

देह तजी अति सकट भावन से तब शुभ्रतनी गति धावो ।
भूमि तहा दुःखरूप इसी मनुकोटिन विच्छन ने डस खावो ।।
देह तहां कृमिरोगन पूरित कटक सेजन से सु घिसायो ।
घातकरे दल सेमन के निज वैर भजो असुरान भिड़ायो ।।७०।।

मेरू प्रमाण गले तहा लोह हिमातप याविधिकी मुनि गायो ।
नाज भखे सब लोक तनो न मिटे ग़द एक कणा न लहायो ।।
सागर नीर पोये न बुझे तृष्णा जल बू द न दृष्टि लखायो ।
वरणे थिति सागर की कहुं भाग्यउदय नर की गति आयो ।।७१।।

वास कियो नव मास अधोमुख मात जने दुख से जु घनेरो ।
बालपने गद दन्त पलादिक ज्ञान विना न मने वचनेरो ॥
यौवन भामिन सग रचे जु कपाय जली गृह भार वडेरो ।
पुत्र उछाह सु हर्ष वढ़ो सु वियागसे आकुल ताप तपेरो ॥७२॥

द्रव्य उपार्जर कष्ट सहे अव यो करनो यह तो हम कीनो ।
सतन जोग न तो दुःख भोग कुपुत्र कुनार तने दु'ख भीनो ॥
पीडित रोग दरिद्र फसे अति आकुल से कर बंध नवीनो ।
आरति ठान भली सिख भान सो मूढ कभी सत्संग न कीनो ॥७३॥

वृद्ध भयो तृष्णा जु दहो मुख लार वहै तन हालत सारे ।
वस्त्र सम्हाल नही तनकी वृषकी जु कथा तहा कौन उचारो ॥
काल अचानक कठ दवे तव खाय विना घृष यों तन प्यारो ।
चेतन कूच कियो तनसे सुकुम्व के इन्धन से वपु जारो ॥७४॥

निर्जरा कीन अकाम कभी लहि स्वर्ग तनी गति सुख सुमानो ।
हो विसया रस मत्त तहा अति आतुर भोग न चाह दहानो ॥
देख विभव पर क्रूर डसो जम भाल लखी चयते बिललानो ।
आरतिसे मर कर्म ठगो जिय फेर भवार्णव मे भरमानो ॥७५॥

यो जुभ्रमो चिरकाल जियाबिन सम्यक सुक्खसमाज न पायो ।
जन्म जरा मरणादिक रोग कलेश तनो कहुं अन्त न आयो ॥
आप स्वरूप विसार रचे पर दुःख चितारत फाटत कायो ।
सो अब यो दु.ख नाहिं कछू लख सम्यक की दृढ चेतनरायो ॥७६॥

दोहा

इम चिंतन कर वेदना, सर्व निवारे सूर ।
फिर निर्भय नरसिंहवत, कहा करे हितपूर ॥७७॥

छप्पय छन्द

शक्ति वचन की रहे जैन श्रुत मुख से गावे ।
या बिन वचन कहे नेम घर ममत नशावे ॥
निकट आयु लख पहर चार द्वै इक दिनकेरी ।
चउविधि तज आहार परिग्रह द्वै विधि टेरी ॥
पुन शक्ति देख तज जीव बहु जुदी-२ शक्ति धरे ।
इम नेम जाव जय त्यागहित न साधनमे अत परे ॥७८॥

अन्त सल्लेखना माँड आराधन चउ विधि ध्यावे ।
क्षरण-२ करे सम्हाल भाव कहू डिगन न पावे ।।
कर दृढ़ तत्व प्रतीति धार सम्यक निरखेदे ।
वेदन तीक्षण निपट ताहि अन्तर नही वेदे ।।
जब वचनवद होता लखे, तब सुवचन से यो कहब ।
तुम जिनवानी पढ़ियो जु बहू, असत काल यह देह आब ।।७९।।

दोहा

परमेष्टी पाँचोन को, रूप सु उर मे धार ।
नमस्कार हित युत करे, फिर फिर कर शिरधार ।।८०।।

जैन धर्म निज विंव अरू, जिनवाणी जिनधाम ।
शुद्ध भाव से देव नव, तिनको करे प्रणाम ।।८१।।

कृत्याकृत्यम जिन भवन, सिद्ध क्षेत्र भक्तार ।
तिनको वंदों भाव से, युगल चरन शिरधार ।।८२।।

उत्तम क्षमा समस्त से, कर हित मित वतलाय ।
आप क्षमा करवाय के, बैर न राखे भाय ।।८३।।

मौन लहै तव धीर सो, अन्तर के दृग खोल ।
तजे राग रूप मोह सब, कर परिणाम अडोल ।।८४।।

जवलौ शिथिल न होय तन, इन्द्रिय वल मन दौरं ।
तवलोव अनुभव कीजिये, प्रभु आतम गुण ओर ।।८५।।

शिथिल पड़ी जवजानिये, इन्द्रिय तन मन द्वार ।
तव नवकार उचारिये, महामन्त्र जग सार ।।८६।।

सवैया

ज्ञान विना नर नारि पशु है योग मिले वड़ भाग सम्हारे ।
प्राण तजे नवकार उचारत तो गति नीच तनी नहि धारे ।।
अजन चोर करी मृगराज अजासुत आदि जपे नवकारे ।
स्वर्ग तनो सुख वेग लयो शुभ वीज से वृक्ष यथा शुभ सारे ।।८७।।

दोहा

मरण समय औषधि निपुण, दुःख नाशक सुखमूल ।
वार वार मन्त्रहि जपे, तजे जगति दुःख शूल ।।८८।।

मेटै वांछा सबल पुन, करे न बन्ध निदान।
रत्न छोड़ कांचन ग्रहें, त्यों समाधि फल खान ॥८६॥

सवैया

जीव प्रदेश खिचे तन से दुःख से नही आकुल ताप तपेंगे।
जीति परीषह हो सुखरूप निरंतर सो नवकार जपेंगे॥
आसन जो शुचि होइ जिया शुभ ध्यान धरे वसु कर्म छिपेंगे।
कठ लगे कफ आन जबै शुभ मूल से वे दश प्राण चपेंगे ॥६०॥

दोहा

या विधि अधिक सम्हाल से, तजे देह सुख भौन।
शुभ गति सम्मुख होइ कर, जीव करे गति गौन ॥६१॥

छप्पय छन्द

जो समाधि आदरे तासु वांछा मन चावे।
कर उदार परिणाम ताहि निशिदिन ही ध्यावे॥
कब आवे वह घडी समाधि सु मरण करोंगे।
अन्त सल्लेखन माड कर्म रिपु से जु लडोगे॥
यह चाह रहे निशिदिन जबै, कुगति बन्ध नाही करे।
सम्यक्त्ववान जग पूज्यं हो, निश्चय से शिवनिय वरे ॥६२॥

पंचम काल कराल मे न सयम जो गाई।
पर समाधि आदरे तास महिमा अधिकाई॥
ता फल सूर गति लहै इन्द्र चक्री नर राई।
हो सब जग भोग विदेहा जन्म लहाई॥
सुख भोग धार तप कर्म हर, शिव सुन्दरि परणें सुजन।
मुख एक थकी वरणें सुकिम, धन्यसमाधि महिमा सुभन ॥६३॥

दोहा

देह अशुचि शुचि को यहा, कुछ न विचार करेह।
पढ़े पाठ मत्रहि जपे, अशुचि सदा यह देह ॥६४॥
श्री कास्यप क्रमयमल को, नम विक्रम आन।
द्वादायग दोपा सुघर मूर्द्धन क्षनद विहान ॥६५॥
नरक कलामृत तास रूच, रस्मिन उदय रहत।
शतक समाधि स विस्तरो, तव लग जय जयवत ॥६६॥

सवैया

मंगल से बहुत विघ्न नशे यह पाठ सूपूरण मगल कीने ।
है निमित्त वह वीर दई सिख श्रावक प्रेर उदासिय भीने ।।
राखन कट सुहेत रचे सब जीव पड़े सु समाधिहि चीन्हे ।
तास त्रमाण श्लोकन का युगसे जु पचास कहै जु नवीने ।।९७।।
नाम समाधि शतक्क यथा इक से इक छन्द कवित्त सु कीने ।
कर्त्ता मूल जिनेश गणी क्रमसे सोराम गुमानी कीने ।।
ता अनुसार सो प्राण पुरामह छंद रचे लघु धी बदलीने ।
लक्ष्मणदास सो भ्रात बड़े तिनने यह सोधि समापति कीने ।।९८।।

दोहा

इक नव युग पर युग धरे, शुभ संवत्सर जान ।
भादव वल सु तीज गुरू, पूरण किया विधान ।।९९।।
या में छन्द रचे इते, दोहा पेंतालीस ।
पुन छप्पय इकवीस है, कवित्त रचे पेंतीस ।।१००।।
सख्या सब श्लोक मिल, युगशत और पचास ।
अल्प बुद्धि वरणो सु यह, 'बुधजन' सोधो जासु ।।१०१।।

संसार की दशा

जिस प्रकार बहुत से पक्षी एक वृक्ष पर आकर रात्रि को बसेरा करते हैं, और प्रातःकाल सवेरा होते ही सब उड़कर दशो दिशाओ को चले जाते हैं, उसी प्रकार बहुत से प्राणी एक कुल मे आकर जमा हो जाते हे, कुछ काल स्थित होकर आगे-पीछे मर जाते हैं, और अन्य कुलो मे जाकर जन्म ले लेते हैं, । ऐसी वस्तुस्थिति के होते हुए बुधजन किसका शोक करें ?

—अनित्यपञ्चाशत्, श्लोक १६

१३ समाधि दीपक

श्री दीनदयालु जी

समाधि मरण किसको कहते हैं—

रत्नत्रय बाधा पडे, सकट ऐसो आय।
देह त्याग वह साधना, समाधि मरण कहाय ।। १ ।।
धर्म नशे चारित नशे, सत दर्शन अरु ज्ञान।
निश्चय हो, तन त्यागवो, पण्डित मरण सुजान ।। २ ।।

समाधि मरण कब करना चाहिए—

जरा अकाल रोग अरु, अग्नि नीर उत्पात।
मारि काट उपसर्ग सब, दीखै हरते गात ।। ३ ।।
मग भूले वन ना मिले, नाव नीर मे कष्ट।
वायुयान आकाश मे, होता देखे नष्ट ।। ४ ।।
गिरि बालू हिमखण्ड सब, सकट नाहि उपाय।
धर्म राखि तन त्याग नर, पण्डित मरण कराय ।। ५ ।।
सर्प उसे नाहर भखे, असुर उपद्रव लाय।
अनटलने सकट सभी, समाधि मरण लहाय ।। ६ ।।
राजा वैरी दुष्ट जन, प्राण लेन को आय।
तन से ममता त्याग कर, समाधि मरण धराय ।। ७ ।।

समाधि मरण के अन्य नाम—

धर्म हेतु तन छाड़िवो, समाधि मरण कहाय।
पण्डित और सन्यास हू, इक ही अर्थ जनाय ।। ८ ।।
विज्ञ कहे सल्लेखना, पण्डित मरण कहाय।
नाम भेद से भेद है, अर्थ भेद नहि पाय ।। ९ ।।

समाधि मरण की विधि—

राग द्वेष सम्बन्ध तज, और परिग्रह मान।
करे क्षमा अरु करवावे, घर बाहर जन जान ।।१०।।
धन धरती जाकी हरी, ताकूँ वापिस देय।
सन्तोषित यो उन करे, सबे मित्र कर लेय ।।११।।

घर कुटुम्ब रिश्ते सगे, जा को जो कोइ होय ।
सम्पत्ति धन सब बांट कर, हिस्सा दे सब कोय ॥१२॥

कृत कारित अनुमोदिनी, पाप करे जो जान ।
आलोचना निर्दोष कर, धार महाव्रत मान ॥१३॥

राग द्वेष विषाद भय, शोक अरति को त्याग ।
अमृत सम शांस्त्र पढ, रुचि उछाह वैराग ॥१४॥

भोजन तज पय राखिये, पय तज लीजे मही ।
मही त्याग कर गर्म जल, राखो क्रम है यही ॥१५॥

जलहु त्याग उपवास कर, जब तक शक्ति रहाय ।
अन्त धर णमोकार मन, तजि तन चेतो लाय ॥१६॥

समाधि मरण में कर्त्तव्य—

पाच पाप को त्याग कर, अपनी शक्ति समान ।
घर तिष्ठा मुनि सम रहे, धारे धैर्य महान ॥१७॥

रोगादिक सब वेदना, सहे वीरता धार ।
बाहिर प्रकट ना करे, चर्चा धर्म अपार ॥१८॥

ममता आतम कारणे, मिथ्यात्वी दुख पाय ।
लखि वियोग को निकट मे, सम्यक्त्वी हुलसाय ॥१९॥

समाधिमरण करने वाले को 'मृत्यु को महोत्सव' मानना—

नही भयो सम्यक मरण, मरो अनन्ते बार ।
एक बार जो होत फिर, क्यों आतो ससार ॥२०॥

सम्यक्त्वी सोचे यही, मृत्यु महोत्सव मान ।
मृत्यु विन सुख ना मिले, क्यो न महोसत्व जान ॥२१॥

आत्मा को समझाना—

ज्ञान गात तेरा अमित, हाड़ मांस तन नाहि ।
इनके विनशत मत डरे, समझ सोच मन माहिं ॥२२॥

जो मृत्यु देवे सही, नूतन दिव्य शरीर ।
जर्जर दुखित शरीर को, तजते क्यो भय पीर ? ॥२३॥

आयु पूर्ण हो उदय नव, गमन आतम का होय ।
चौ आराधन शरण गहि, रोक सके नहिं कोय ॥२४॥

दुःख सहे हैं गर्भ से, रोग शोक फिर आय ।
देह जेल दुख मेटने, मृत्यु एक ही उपाय ॥२५॥
मृत्यु से भय भीत क्यों ? सोच जीव, सुन लेय ।
हितू मौत सम जग नही, सुख सम्पत्ति तन देय ॥२६॥
भव वाधा को मेटने, मृत्यु एक ही मित्र ।
जिन चूकौ अवसर यही, पावे दुःख विचित्र ॥२७॥
सुख दुख का ज्ञाता तुही, तुही चेतना जीव ।
तन जो तेरा है नहीं, छोड़त क्यो दुख पीव ॥२८॥
मोह देह से त्याग कर, सहले दुख, सम होय ।
निश्चय ये सब देयगे, स्वर्ग मोक्ष सुख तोय ॥२९॥
भव से मोही जीव ही, मृत्यु से डर जाय ।
वैरागी ज्ञानी वही, हुलसे लाभ उठाय ॥३०॥
रोगादिक सताप जो, उपजे तन के माहि ।
मोह नाश के अर्थ हैं, सुख अनेक उपजाहि ॥३१॥
ममता कर इस देह से, जन्मो वार अनन्त ।
पाये दु.ख अनेक सब-गिनत न आवे अन्त ॥३२॥
अबै फेरि अवसर मिलो, चूकूं जो इस माहि ।
ममता दुख की देह से ले कुयोनियों जाहिं ॥३३॥
रोगादिक जितने सबै, उपजे है मम काय ।
सोचे ममता मारने, धर्म चिताने आय ॥३४॥
अशुभ उदय जब मन्द हो, औषधि कछु सुख देय ।
मरना फिर हू होयगा, चिन्ता व्यर्थ करेय ॥३५॥
किये कर्म बिन फल दिये, छूटत हर्गिज नाहि ।
कायरता से क्यो सहे ? बिगड़ उभय भव जाहिं ॥३६॥

उत्तम समाधि मरण धारण करने वालों के कुछ दृष्टान्त —

अब सुनियो दृष्टान्त कछु, साधु जनो के आप ।
सहे कष्ट सल्लेखना, हरे दुःख सब ताप ॥३७॥
करो ध्यान अस सत का, जीते कष्ट अनेक ।
होय लीन आराधना, पाये सुख प्रत्येक ॥३८॥
तीन दिवस लो स्यालनी, भख्यो पाव सुकमाल ।
घोर सहो उपसर्ग मुनि, साध्यो अर्थ विशाल ॥३९॥

परम धैर्य धारण करो, तुमहू मन समझाय ।
उनकी जैसी वेदना, नाहि आपकी काय ॥४०॥
बैरी ठोके कील तन, **गजकुमार मुनिराज** ।
तोहू नैकहु ना डिगे, तुम भी साधो काज ॥४१॥
सनत्कुमार मुनिराज के, रोग भये अति जोर ।
सही वेदना साल शत, तोय निकट हैं छोर ॥४२॥
धर्मघोष मुनिराज को, प्यास तीव्र उपवास ।
तजे प्राण आराधना, तू मत होय निराश ॥४३॥
बैरी छेद्यो अङ्ग सब, **अभय घोष मुनिराज** ।
साध्यो अर्थ अटूट रहि, नम्बम तेरो आज ॥४४॥
अनगिनती ऐसे भये, सही वेदना घोर ।
डिगे न व्रत से नैक हू, पढो शास्त्र दिल बोर ॥४५॥

समाधिमरण की आवश्यकता—

सफल वही तप, जिन कहे, अन्त समाधि पयान ।
भूली नहिं सन्यास सो, स्वर्ग मोक्ष की खान ॥४६॥

समाधिमरण के अतिचार –

इच्छा जीवन मरण अरु, भय परलोक निदान ।
मित्र स्मृति यो पाच है, अतिचार जिन मान ॥४७॥

समाधि मरण की महिमा—

रत्नत्रय को पालते, समाधि मरण कराय ।
सर्व दुखों को टालते, स्वर्ग मोक्ष पद पाय ॥४८॥

मोक्ष का स्वरूप (नि.श्रेयस)

जन्म जरा भय रोग दुख, मृत्यु शोक नहि पाय ।
नित्य सुख मोक्ष मे मिले, निःश्रेयस कहलाय ॥४९॥

मोक्ष में कौन निवास करता है—

हीन अधिक नहिं अवधि है, बल, धी, दर्श अनन्त ।
सुख शुद्धि तृप्ति सहित, सिद्ध मोक्ष चिर कन्त ॥५०॥

समाधिमरण से फल—

स्वर्ग आदि अति उच्च सुख, धन कुटुम्ब सब योग ।
देती सब सल्लेखना, तीन लोक सुख भोग ॥५१॥

१४ समाधि दर्पण

श्री संत चारित्र सेन

अनुवाद :—श्री कामता प्रसाद

गणधर भाषित शांति समाधी, दर्शन-ज्ञान चरित्र समृद्धि।
जिय ! देखी जिनदेव समाधी, जो धारे वह सम्यग्दृष्टी !!

रागद्वेष उपशम मे हारे, कैसे वे परमातम निहारें ?
जो परमातम देख न लेवें, उन किम रागद्वेष शम होवें!!

जो भावुक हृदय आतम जोवे, वो मिथ्यात्व महातरु खोवे!
जो मिथ्यात्व महातरु खोवे, सो फिर आतमरूप को जोवे!!

तब तक ही जिय भवदुख पाता; जब निजरूप न मन में लाता।
यूं जान जिय ! आपा ध्याओ, तो अजरामर पद तुम पाओ।
ऐसे जान जिय ! निश्चय कीजे, क्षण-क्षण आतमध्यान धरीजे।
निज ध्यान धरे, जिनवर भाषे, शाश्वत सुख अनन्त प्रकाशे ।।

जिय ! पर रूप से मन को वारो, तो निजरूप को थिर हो धारो !
आतमरूप मे थिर हो जावे, तो परयत्र न मन को भावे!!

पंच इन्द्रिय अरु मन को मारो, आतम को भिन्न ज्ञानी मानो।
जो आतम को सुष्ट पहिचाने, वह इन्द्रिय मन की नित हाने ।।

हेय इन्द्रिय मन है जिय जानो; परमातम है शुद्ध सच मानो।
जीव अजीव भेद मत लाओ, ज्यो कर्मक्षय शीघृ कराओ।।

जिय स्व-शरीर न जीवन जानो, ज्ञान गम्भीर निज आतम मानो।
यू जान हो भेद विज्ञानी, पुद्गल कर्म भिन्न पहिचानी ।।

ऐसे जानो धरो समाधी, दर्शन-ज्ञान चरित्र सुसिद्धी।
यौवन धन परिजन सब नाशै, केवल धर्म एक शाश्वत भाषै ।।

जीवन-सार जीव गुण भाओ, धर्म यही जिनवर ने बताओ!
पुत्र कलत्र धन सुवर्ण है जो भी, मरते साथ न जायें कोई ।।

इंगुर घाल घाव ज्यों खोते, लाभ त्यो सचित साधू पाते !
क्षमा जी धरते पाप नशाते, वे नर निरन्तर सुख है पाते!!

यों जान जिय ! निष्ठुर ना बोलो, किम समभाव दुख ना सहो हो ?
जिय भव्य ! सुन साधु अनुरागी, निर्मलनिज ज्ञानसरोवर स्वादी! !

मन वच काय दया नित पालो, तो दुख क्लेश जलांजलि घालो !
मीठे बोलो, निठुर न उचारो, तो जिय ! सुख निश्चल निर्धारो! !

यो जान जिय ! परतीति करो हे! जिनघर स्वामी हिय धरो रे !
ज्यों नेह घना त्यो दु:ख बड़ा है ! नेह छोडे मुक्ति लाभ खरा है! !
सर जल ज्यों दिन दिन सूखे, त्यों तब आयु पल पल छीजे !
एकेंद्रिय पंचेंद्रिय होवे, जवलग आतमरूप न जोवे ! !

यू जिय ! सचमुच 'आपा' ध्याओ, शाश्वत सुख अविचल तुम पाओ !
निर्मल रत्नत्रय थिर जग माही, भाओ तो मल छीजे भाई ! !

दर्शन-ज्ञान चरण जो जाने, सो निश्चय आतम मनमाने ।
जो आतम श्रद्धा निर्मल पावे, सो सद्दर्शन अविचल भावे ! !

केवल निजात्म सुट्ठु विचारो, तो निश्चय जिय ! ज्ञान निर्धारो !
जो पुन-पुन आतम थिर थाओ, तो निश्चय चारित्र मन भाओ ! !

शिव-सुख का मार्ग मन लाओ, खापही आपा मन मे भाओ !
जो निज आतमगुण में पागे, तो ससार महादुख भागे ! !

कर्म न करिए, सहज शुद्ध होओ, आप स्वरूप मे लौ जो लाओ!
शुद्ध-सरस-फल जिय ! एक मानो, सकलदेव अरहत बखानो ! !

अष्ट कर्म रहित जिय शिवपुर जावे, निकल देव जिनेन्द्र बतावे !
जीव देवत्व रूप जो जाने ! तो वह रत्नत्रय को माने ! !

यह भावना जिय पूर्व भावे, जो भावे सो शिव-सुख पावे ।
इस प्रकार यह भावना भाओ, दुख औ' कर्म का क्षय कराओ ! !

'णमो अरहताण' क्षण क्षण ध्याओ, ज्यों निर्वाण शीघ्र तुम पाओ !
चारित्रसेन समाधि पढ़े है ! इस भव कर्म—कलक ढहे है ! !

नियम समाधि सुमिर विष नाशे, जिय ! परमाक्षर पाप प्रनाशे !
धन्य शुभ दिन सु-समाधि मरीने, जन्ममरण ज़लांजलि दीजे ! !

ऐसी समाधि जो अणदिन पाले, सो अजरामर शिव सुख पावे !
जिय ! देखो जिनदेव समाधि, जो धारे वह सम्यग्दृष्टी ! !

१५ परम समाधि

—श्री प्यारेलाल जी

परम समाधि लगाय कर, कर्म कलक जलाय ।
भये सिद्धि परमात्मा, वन्दू मन वच काय ॥१॥

राग द्वेप विकलप रहित, स्वातम मे रम जाय ।
स्थिरता, निर्विघ्नता, पाय महा सुख पाय ॥२॥

आतम रस आस्वादता, अनुभव ही सुख दाय ।
स्वयसवेदन ज्ञान घन, शिवपुर देय मिलाय ॥३॥

दर्शन ज्ञान, चरित्र को, प्रीति सहित अपनाय ।
च्युत ना होय स्वभाव से, 'लय' समाधि को पाय ॥४॥

ज्ञानशक्ति को जान कर, बहु विधि करै विचार ।
ज्ञान चेतना का धनी, निज को लेय चितार ॥५॥

चारित्र रथ मे वैठकर, निज मे थिरता पाय ।
कर्म कालिमा धोयकर, भव दु.ख जाय नशाय ॥६॥

बीतराग आनन्द मय, समरस भाव सुस्वाद ।
सो समाधि उत्तम कही, भव दु:ख करदे बाद ॥७॥

स्वातम रूप बिचार मे, जो थिरता बढ़ जाय ।
निज स्वभाव विश्राम पा, भव दु.ख जाय नशाय ॥८॥

तर्क रहित निज पद लगन, लीन ब्रह्म मे जोय ।
कर्म कालिमा धोय कर, शिव मग गामी होय ॥९॥

रागादिक जड काट कर, उपजा सहज समाधि ।
भाव विशुद्धि पायकर, शिव मारग ले साधि ॥१०॥

चिन्मय मे तन्मय हुआ, पर पद अब नहि भाय ।
बिमल चरित के खेल में, मन की ममता जाय ॥११॥

जैसे वर्षा मेघ की, शाति जगत को देय ।
त्यो आतम आनद घन, साधक दु ख हर लेय ॥१२॥

धर्म मेघ वर्षा भई, सब गुण शुद्ध प्रतीत ।
यथाख्यात चारित्र मे, चारित्र भया पुनीत ॥१३॥

पर का वेदन मिट चुका, निज वेदन सुखदाय।
चार चतुष्टय प्राप्त कर, 'अरहत' पदवी पाय ॥१४॥
परम शुद्ध जिनवर भये, पाया अविचल धाम।
लोक शिखर पर जा बसे, रहा न जग से काम ॥१५॥
लोकालोक समस्त को, एक समय लूं देख।
ऐसी मुझ मे शक्ति है, किया न निश्चय नेक ॥१६॥
इन्द्रियं मन मुनिराज के, चंचलता नहिं पांइ।
जहा लगाना चाहि मन, तहा लगा वो पांइ ॥१७॥
कर्म नाश का हर घडी, मुनि जन करे उपाय।
स्वातम का आश्रय करें, सो है ध्यान 'अपाय' ॥१८॥
सात तत्व का चिन्तवन, हित-अनहित का ज्ञान।
आश्रव, बध अहित समझि, हितकर सवर जान ॥१९॥
सम्यक अपने रूप मे, जब तन्मय हो जाय।
चिन्मय, उज्जल, ज्ञानधन, ज्योति प्रगट हो जाय ॥२०॥
आश्रव भाव निरोध कर, सवृत आतम स्वभाव।
ज्ञान ज्ञान मे लीन हो, शुद्ध भाव सद्‌भाव ॥२१॥
हुये, होइगे, हो रहे, जो भवि सिद्ध अनत।
समकित महिमा जानकर, धारण करो निशक ॥२२॥
दर्श ज्ञान चारित्र मे, जो जिय तन्मय होय।
स्थिरता को पायकर, कर्म कालिमा धोय ॥२३॥
नित्यानंद स्वरूप शुद्ध, आतम अनुभव पाय।
अनुपम सुख को पायकर, रस नीरस हो जाय ॥२४॥
दर्श, ज्ञान, चारित्र युत, आतम प्रीति लगाय।
अन्य सर्व से मोह तज, निरमोही हो जाय ॥२५॥
घटा राग पर वस्तु से, तो तप से क्या काम।
घटे नही अनुराग जो, तो तप से क्या काम ॥२६॥
चिंता तज के मोक्ष की, ज्ञानी आतम ध्याय।
पर पदार्थ के त्याग की, बात कहां से आय ॥२७॥
अमृत सम यह तत्व है, ज्ञानी पीवें जाय।
अजर, अमर पदवी लहै, जग छुटकारा पाय ॥२८॥

छोड़कर पर भाव को, निज भाव का आश्रय करे ।
शुभ भाव भी दे त्याग कर, शुद्धात्म का चिंतन करैं ॥२६॥
प्रकृति-स्थित बन्ध अरु, अनुबाग बन्ध प्रदेश से ।
जो रहित सो मैं आतमा, यो चिंतकर थिरता लहे ॥३०॥
शुभ-अशुभ भावो से रहित, चैतन्य की शुद्ध भावना ।
ससार रोग अनादि को, औषधि समझ आलोचना ॥३१॥
मन, वचन, तन व्योपार तज, सयम, नियम, तप आचरे ।
दुरध्यान तज, शुद्ध भाव रत, निश्चय समाधी है उसे ॥३२॥
जो पुण्य-पाप विभाव तज, सब विधि कषायो को तजै ।
निज भाव मे तल्लीनता, स्थायी सामायक वहै ॥३३॥
जो अन्य के वस हो नही, शुभ-अशुभ चिंतन को तजै ।
द्रव्य,गुण, पर्याय चिंतन, छोड़कर स्वातम जपै ॥३४॥
जो भव्य हो तल्लीन निज, चैतन्य निर्मल ज्योति मे ।
पाले समाधी सम्पती, तजते सकल धन धाम है ॥३५॥
पाते न दर्शन, ज्ञान, तप, चारित्र निश्चय तत्व जो ।
वो जीव नाटककार सम नहि, प्राप्त करते मोक्ष वो ॥३६॥
वालक, युवा, वृद्धापना रोगादि सबको जानता ।
धनवान, निरधन, राव, रक, सभी करम कृत मानता ॥३७॥
आत्म ज्ञान पवित्र तीरथ, न्हाय ते विद्वान है ।
आत्म मल को धोयकर, स्वय ही बने भगवान है ॥३८॥
चैतन्य रत्नाकर किनारे, जो रहे विद्वान हैं ।
बहुमूल्य पाते रत्न वो, उत्तम बने धनवान हैं ॥३९॥
आगम स्वरूपी डोर मे मुनि, बुद्धि धनुष सम्हाल के ।
ज्ञान दर्शन, चरित बाण, चलाय शत्रु सहारते ॥४०॥
मोह रूपी गाढ़ निद्रा, बस भये जग जीव जो ।
पुत्र, स्त्री आदि को, अपने समझ अकुलाय सो ॥४१॥
होकर अनाकुल रूप से, निज भाव मे झुक जाय जो ।
'मैं ज्ञान हू' 'मैं ज्ञान हू' स्वयमेव उसको भान हो ॥४२॥
ज्ञायक निजानद बाग मे, धर्मात्मा की प्रीति हो ।
वो केलि करते स्वात्म मे, पर से न करते प्रीति वो ॥४३॥

**

१६ वैराग्य चौबीसी

—भैया भगवतीदास जी

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव।
मन वच शीश नवाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१॥

जगत मूल यह राग है मुक्ति मूल वैराग।
मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सके तो जाग ॥२॥

क्रोध, मान, माया धरत, लोभ सहित परिणाम।
ये ही तेरे शत्रु है, समझो आतम राम ॥३॥

इनही चारों शत्रु को, जो जीते जग माँहि।
सो पावहि पथ मोक्ष को, यामे धोखो नाँहि ॥४॥

जा लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म।
सो लक्ष्मी सग ना चले काहे भूलत भर्म ॥५॥

जो कुटुम्ब के हेत तू करत अनेक उपाय।
सो कुटुम्ब अग्नि लगा, तोकों देय जराय ॥६॥

पोषत है जा देह को जोग त्रिविध के लाय।
सो तोकों छिन एक मे, दगा देय खिर जाय ॥७॥

लक्ष्मी साथ न अनुसरे, देह चले नहि सग।
काढ-काढ़ सुजनहि करे, देख जगत के रंग ॥८॥

दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय।
विषय सुखन के कारणे, सर्वस चले गमाय ॥९॥

जगहि फिरत कई युग भये. यह कछु कियो विचार।
चेतन अब किन चेतहू नरभव लहि अतिसार ॥१०॥

ऐसे मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥११॥

पीतो सुधा स्वभाव की, जी तो कहूँ सुनाय।
तू रीतो क्यो जातु है, बीतो नरभव जाय ॥१२॥

मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है शिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ॥१३॥

चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेप को सग।
ज्यो प्रगटे परमात्मा, शिव सुख होय अभंग ।।१४।।

ब्रह्म कहू तो मैं नही क्षत्री हूं पुनि नाहि।
वैश्य शूद्र दोऊ नही चिदानन्द हू माहि ।।१५।।

जो दीखे इन नैन सो, सो सब विनस्यो जाय।
तासो जो अपनो कहे, सो मूरख शिर राय ।।१६।।

पुद्गल को जो रूप है, उपजे विनसे सोय।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ।।१७।।

देख अवस्था गर्भ की, कौन कौन दुख होय।
बहुरि मगन ससार मे, सो लानत है तोय ।।१८।।

अधोशीश ऊरध चरण, कौन अशुचि आहार।
थोडे दिन की बात यह, भूल जात ससार ।।१९।।

अस्थि चर्म मलमूत्र मे, रैन दिना को बास।
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ।।२०।।

रोगादिक पीड़ित रहे. महा कष्ट जब होय।
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्ते कोय ।।२१।।

मरन समय बिललात है कोऊ लेहु बचाय।
जाने ज्यो त्यो जो जिये, जोर न कछू बसाय ।।२२।।

फिर नरभव मिलवो नही, कियेहु कोटि उपाय।
तातें बेगहि चेतहू अहो जगत के राय ।।२३।।

"भैया" की यह विनती चेतन चितहि विचार।
ज्ञानदर्श चारित्र मे, आपो लेहु निहार ।।२४।।